KOTHARI INSTITUTE

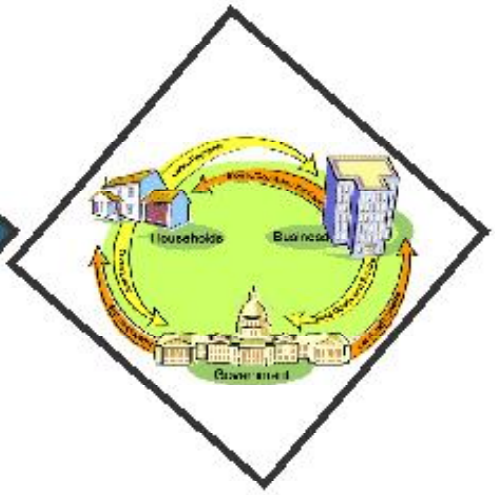

भारतीय अर्थव्यवस्था

अनुक्रमणिका

इकाईयाँ	विवरण	पेज नं.
इकाई-1	कृषिः अर्थव्यवस्था का आधार	1
इकाई-2	मानव संसाधन और मानव पूँजी	7
इकाई-3	निर्धनता	13
इकाई-4	भारत में खाद्य सुरक्षा	20
इकाई-5	आर्थिक विकास	27
इकाई-6	भारतीय अर्थव्यवस्था के क्षेत्रक	29
इकाई-7	मुद्रा और साख	38
इकाई-8	वैश्वीकरण और भारतीय अर्थव्यवस्था	44
इकाई-9	उपभोक्ता अधिकार	52

दो शब्द

संघ लोक सेवा आयोग (यू.पी.एस.सी.) ने सिविल सेवकों के चयन हेतु निम्नांकित पाठयक्रम के विषयों का चयन किया है जो सिविल सेवकों को उनके अध्ययन स्तर पर एक उन्नत विचारधारा विकसित करने में मदद करें।

पाठयक्रम को मुख्य रूप से निम्नलिखित दो रूपों में समझा जा सकता है-

1. स्तम्भ (बाह्य)

1. इतिहास
2. राजनीति
3. भूगोल
4. अर्थ-शास्त्र

2. स्तम्भ (आन्तरिक)

1. तार्किक कौशल एवं विश्लेषणात्मक क्षमता
2. नीतिशास्त्र, सत्यनिष्ठा और अभिप्रति

देश की प्रगति की दर उसकी अर्थव्यवस्था निर्धारित करती हैं, जहाँ एक ओर यह दर्शाती है कि किस प्रकार देश में धन की प्राप्ति होती है वही दूसरी ओर उसका किस-किस क्षेत्र में निगमन किया जाए जिससे की मानव समाज का विकास हो, यह भी दर्शाती है, अर्थव्यवस्था के कारक ही देश की विकास नीतियों को परिभाषित करते हैं, जो मानव विकास सूचकांक, शिक्षा का महत्व, तकनीकी ज्ञान इत्यादि के माध्यम से परिलक्षित होता है।

एक सिविल सेवक उपर्युक्त क्षेत्रों का अध्ययन करकें नीति निर्धारण करने वालों को उपर्युक्त क्षेत्रों के प्रति सचेत कर सकता हैं, धन के अपव्यय को रोकने व उनके सदुपयोग को बढ़ा सकता है तथा राष्ट्र निर्माण में सहयोग कर सकता है।

किसी भी राष्ट्र को जानने का आसान तरीका है; उस राष्ट्र की परंपरा, इतिहास, भूगोल व आर्थिक आधार का ज्ञान। यदि हम इन विषयों को जान लेते है तो उस राष्ट्र को सच्चे अर्थों में पहचान सकेंगे।

किसी राष्ट्र की संस्कृति, सभ्यता, रीति-रिवाज, वहाँ के महापुरुषों के जीवन वृतांत, उस राष्ट्र की भौगोलिक विशेषताएँ, वहाँ की मिट्टी, जलवायु, वनस्पति तथा वहाँ के आर्थिक आधारभूत ढाँचे का ज्ञान हमें यह सहायता करता है कि हम उस राष्ट्र को उसके सही स्वरूप में पहचान सकें।

कोठारी इंस्टीट्यूट व कोठारी कॉलेज इन्दौर द्वारा प्रस्तुत यह बुकलेट इस संदर्भ में एक विनम्र प्रस्तुति हैं जिसमें विविध अध्यायों के द्वारा भारत के इतिहास, संस्कृति, भूगोल व आर्थिक विशेषताओं को सहज, सरल ढ़ंग से समझाया गया है। जिससे छात्रगण अपने राष्ट्र को भलीभाँति समझ सके। छात्रों के लिए यह अत्यंत आवश्यक भी है कि वे अपने राष्ट्र को सच्चे स्वरूप में पहचाने क्योंकि आज के छात्र ही कल के नागरिक होंगे।

आज का छात्र ही कल के राष्ट्र का निर्माण करेंगे और सर्वोत्तम राष्ट्र का निर्माण वे ही छात्र कर सकते है, जो अपने राष्ट्र की विशेषताओं, आवश्यकताओं और उसके आधारभूत ढाँचे को समझते और पहचानते हो, इसीलिए कोठारी इंस्टीट्यूट व कोठारी कॉलेज इन्दौर ने एक अभियान, एक मिशन के तौर पर ये बुकलेट प्रस्तुत की है जो न केवल अपने राष्ट्र को जानने में छात्रों के लिए सहायक होगी अपितु आगामी प्रतियोगी परीक्षाओं में सफलता के लिए छात्रों का एक सुदृढ़ आधार भी तैयार करेगी। छात्रों से अपेक्षा है कि वे इस सुविधा का अधिक से अधिक लाभ उठायें और स्व-निर्माण से राष्ट्र-निर्माण की ओर अग्रसर हो।

NOTES

इकाई-1 : कृषि: अर्थव्यवस्था का आधार

उत्पादन क्रियाओं के लिए विभिन्न प्रकार के संसाधनों की आवश्यकता होती है, यथा-प्राकृतिक संसाधन, मानव निर्मित वस्तुएँ, मानव प्रयास, मुद्रा आदि।

भारत के गाँवों में खेती उत्पादन की प्रमुख गतिविधि है। अन्य उत्पादन गतिविधियों में, जिन्हें गैर-कृषि क्रियाएँ कहा गया है, लघु विनिर्माण, परिवहन, दुकानदारी आदि शामिल हैं।

उत्पादन का संगठन

उत्पादन का उद्देश्य ऐसी वस्तुएँ और सेवाएँ उत्पादित करना है, जिनकी हमें आवश्यकता है। वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन के लिए चार चीजें आवश्यक हैं।

पहली आवश्यकता है भूमि तथा अन्य प्राकृतिक संसाधन, जैसे-जल, वन, खनिज। दूसरी आवश्यकता है श्रम अर्थात् जो लोग काम करेंगे। कुछ उत्पादन क्रियाओं में जरूरी कार्यों को करने के लिए बहुत ज्यादा पढ़े-लिखे कर्मियों की जरूरत होती है। दूसरी क्रियाओं के लिए शारीरिक कार्य करने वाले श्रमिकों की जरूरत होती है। प्रत्येक श्रमिक उत्पादन के लिए आवश्यक श्रम प्रदान करता है।

तीसरी आवश्यकता भौतिक पूँजी है, अर्थात् उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर अपेक्षित कई तरह के आगत।

भौतिक पूँजी के अंतर्गत निम्न मदें आती हैं

(अ) औजार, मशीन, भवनः औजारों तथा मशीनों में अत्यंत साधारण औजार जैसे- किसान का हल से लेकर परिष्कृत मशीनें जैसे-किसान का हल से लेकर परिष्कृत मशीनें जैसे-जेनरेटर, टरबाइन, कंप्यूटर आदि आते हैं। औजारों, मशीनों और भवनों का उत्पादन में कई वर्षों तक प्रयोग होता है और इन्हें स्थायी पूँजी कहा जाता है।

चित्र-कारखाने में मशीनों पर कार्य करते श्रमिक

(ब) कच्चा माल और नकद मुद्राः उत्पादन में कई प्रकार के कच्चे माल की आवश्यकता होती है, जैसे बुनकर द्वारा प्रयोग किया जाने वाला सूत और कुम्हारों द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली मिट्टी। उत्पादन के दौरान भुगतान करने तथा जरूरी माल खरीदने के लिए कुछ पैसों की भी आवश्यकता होती है। कच्चा माल तथा नकद पैसों को कार्यशील पूँजी कहते हैं। औजारों, मशीनों तथा भवनों से भिन्न ये चीजें उत्पादन क्रिया के दौरान समाप्त हो जाती हैं।

एक चौथी आवश्यकता भी होती है। आपकों स्वयं उपभोग हेतु या बाजार में बिक्री हेतु उत्पादन करने के लिए भूमि, श्रम और भौतिक पूँजी को एक साथ कार्य करने योग्य बनाने के लिए ज्ञान और उद्यम की आवश्यकता पड़ेगी। आजकल इसे मानव पूँजी कहा जाता है।

भूमि मापने की मानक इकाई हेक्टेयर है, यद्यपि गाँवों में भूमि का माप बीघा, गुंठा आदि जैसी क्षेत्रीय इकाइयों में भी किया जाता है। एक हेक्टेयर, 100 मीटर की भुजा वाले वर्ग के क्षेत्रफल के बराबर होता है।

भारत में सभी गाँवों में उच्च स्तर की सिंचाई व्यवस्था नहीं है। नदीय मैदानों के अतिरिक्त हमारे देश में तटीय क्षेत्रों में अच्छी सिंचाई होती है। इसके विपरीत, पठारी क्षेत्रों जैसे, दक्षिणी पठार में सिंचाई कम होती है। देश में आज भी कुल कृषि क्षेत्र के 40 प्रतिशत से भी कम क्षेत्र में ही सिंचाई होती है। शेष क्षेत्रों में खेती मुख्यतः वर्षा पर निर्भर है।

NOTES

उत्पादन; भूमि, श्रम और पूँजी को संयोजित करके संगठित होता है, जिन्हें उत्पादन के कारक कहा जाता है।

कृषि उत्पादन में एक मूलभूत कठिनाई है। खेती में प्रयुक्त भूमि-क्षेत्र वस्तुतः स्थिर होता है।

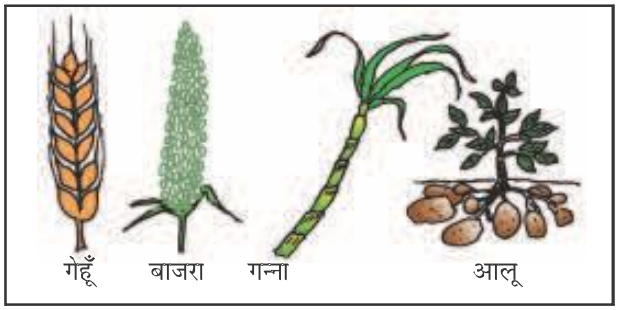

चित्र- विभिन्न फसलें

एक वर्ष में किसी भूमि पर एक से ज्यादा फसल पैदा करने को बहुविध फसल प्रणाली कहते हैं। यह भूमि के किसी एक टुकड़े में उपज बढ़ाने की सबसे सामान्य प्रणाली है।

सारणी 1.1 संबंधित वर्षों में जुताई क्षेत्र

वर्ष	कृषि क्षेत्र (लाख हेक्टेयर)
1950	120
1960	130
1970	140
1980	140
1990	140
2000	140
2010	155
2012	155

एक ही जमीन के टुकड़े से उत्पादन बढ़ाने का एक तरीका बहुविध फसल प्रणाली है। दूसरा तरीका अधिक उपज के लिए खेती में आधुनिक कृषि विधियों का प्रयोग करता है। उपज को भूमि के किसी टुकड़े में एक ही मौसम में पैदा की गई फसल के रूप में मापा जाता है। 1960 के दशक के मध्य तक खेती में पारंपरिक बीजों का प्रयोग किया जाता था, जिनकी उपज अपेक्षाकृत कम थी। परंपरागत बीजों को कम सिंचाई की आवश्यकता होती थी। किसान उर्वरकों के रूप में गाय के गोबर या दूसरी प्राकृतिक खाद का प्रयोग करते थे। यह सब किसानों के पास तत्काल ही उपलब्ध थे, उन्हें इनको खरीदना नहीं पड़ता था।

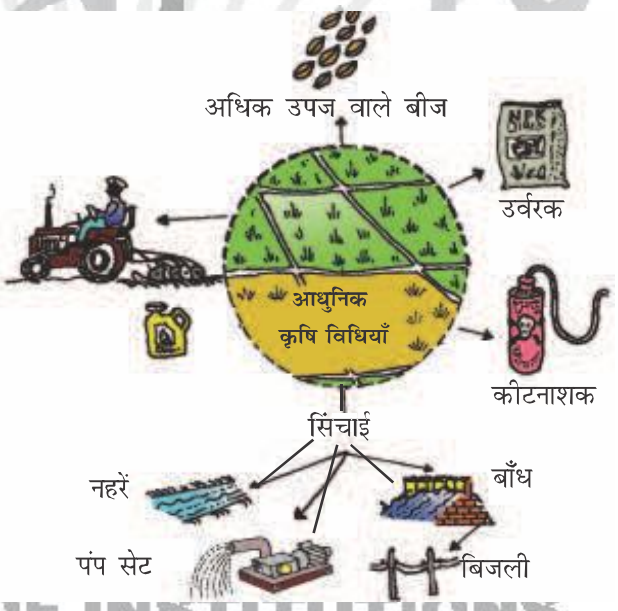

चित्र : आधुनिक कृषि के तरीके, एच.वाई. वी. बीज, रासायनिक उर्वरक आदि

1960 के दशक के अंत में हरित क्रान्ति ने भारतीय किसानों को अधिक उपज वाले बीजों (एच.वाई.वी.) के द्वारा गेहूँ और चावल की खेती करने के तरीके सिखाए। परंपरागत बीजों की तुलना में एच.वाई.वी. बीजें से एक ही पौधे से ज्यादा मात्रा में अनाज पैदा होने की आशा थी। इसके परिणामस्वरूप, जमीन के उसी टुकड़े में, पहले की अपेक्षा कहीं अधिक अनाज की मात्रा पैदा होने लगी। यद्यपि, अति उपज प्रजातियों वाले बीजों से अधिकतम उपज पाने के लिए बहुत ज्यादा पानी तथा रासायनिक खाद और कीटनाशकों की

NOTES

जरूरत थी। अधिक उपज केवल अति उपज प्रजातियों वाले बीजों, सिंचाई, रासायनिक उर्वरकों, और कीटनाशकों आदि के संयोजन से ही संभव थी।

भारत में पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के किसानों ने खेती के आधुनिक तरीकों का सबसे पहले प्रयोग किया। इन क्षेत्रों में किसानों ने खेती में सिंचाई के लिए नलकूप और एच.वाई.वी बीजों, रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशकों का प्रयोग किया। उनमें से कुछ ने ट्रैक्टर और फसल गहाने के लिए मशीनें खरीदी, जिसने जुताई और कटाई के काम को तेज कर दिया। उन्हें इनसे गेहूँ की ज्यादा पैदावार प्राप्त हुई।

दी गई सारणी में भारत में हरित क्रांति के बाद गेहूँ और दालों के उत्पादन को करोड़ टन इकाइयों में दिखाया गया है।

सारणी 1.2 दालों तथा गेहूँ का उत्पादन (करोड़ टन)

वर्ष	दालों का उत्पादन	गेहूँ का उत्पादन
1965-66	10	10
1970-71	12	24
1980-81	11	36
1990-91	14	55
2000-01	11	70
2010-11	18	87
2012-13	18	94
2013-14	19	96
2014-15	17	89
2015-16	17	94

3. कृषि और पर्यावरण

भूमि एक प्राकृतिक संसाधन है, अतः इसका सावधानीपूर्वक प्रयोग करने की जरूरत है। वैज्ञानिक रिपोर्टों से संकेत मिलता है कि खेती की आधुनिक कृषि विधियों ने प्राकृतिक संसाधन आधार का अति उपयोग किया है। अनेक क्षेत्रों में, हरित क्रांति के कारण उर्वरकों के अधिक प्रयोग से मिट्टी की उर्वरता कम हो गई है। इसके अतिरिक्त, नलकूपों से सिंचाई के कारण भूमि जल के सतत् प्रयोग से भौम-जल स्तर कम हो गया है। मिट्टी की उर्वरता और भौम जल जैसे पर्यावरणीय संसाधन कई वर्षों में बनते हैं। एक बार नष्ट होने के बाद उन्हें पुनर्जीवित करना बहुत कठिन है। कृषि का भावी विकास सुनिश्चित करने के लिए हमें पर्यावरण की देखभाल करनी चाहिए।

रासायनिक उर्वरक ऐसे खनिज देते है, जो पानी में घुल जाते हैं और पौधों को तुरंत उपलब्ध हो जाते हैं। लेकिन, मिट्टी इन्हें लंबे समय तक धारण नहीं कर सकती। वे मिट्टी से निकलकर भौम जल, नदियों और तालाबों को प्रदूषित करते हैं। रासायनिक उर्वरक मिट्टी में उपस्थित जीवाणुओं और सूक्ष्म-अवयवों को नष्ट कर सकते हैं। इसका अर्थ है कि उनके प्रयोग के कुछ समय पश्चात्,मिट्टी पहले की तुलना में कम उपजाऊ रह जाएगी

देश में रासायनिक खाद का सबसे अधिक प्रयोग पंजाब में है। रासायनिक खाद के निरंतर प्रयोग ने मिट्टी की गुणवत्ता को कम कर दिया है। पंजाब के किसानों को पहले का उत्पादन स्तर पाने के लिए अब अधिक से अधिक रासायनिक उर्वरकों और अन्य आगतों का प्रयोग करता पड़ता है। इसका मतलब है कि वहाँ खेती की लागत बहुत तेजी से बढ़ रही है।

NOTES

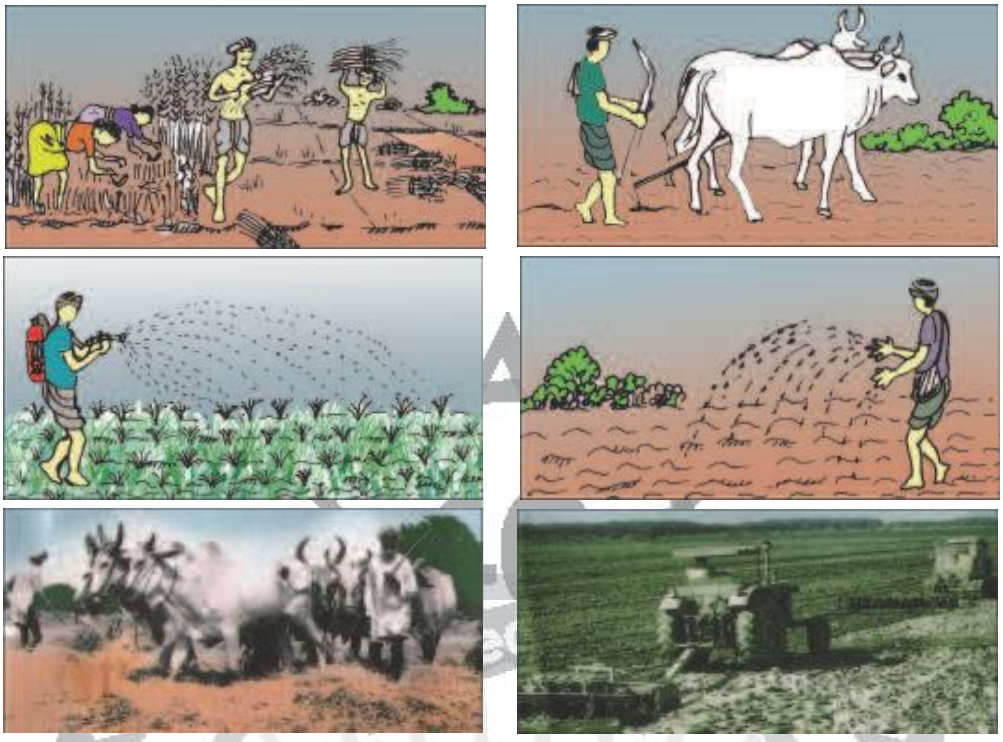

चित्र-खेतों में कार्यः गेहूँ की फसल- कटाई, बीज बोना, कीटनाशकों का छिड़काव तथा आधुनिक एवं परंपरागत विधियों से फसलों की जुताई

दिए गए आरेख में भारत में किसानों और उनके द्वारा खेती में प्रयुक्त भूमि का वितरण दिया गया है।

आरेख 1.1: कृषि क्षेत्र और कृषकों का वितरण

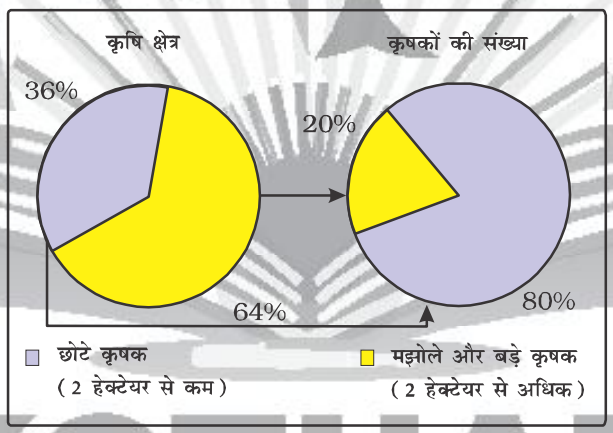

श्रम

भूमि के पश्चात् श्रम उत्पादन का दूसरा आवश्यक कारक है। खेती में बहुत ज्यादा परिश्रम की आवश्यकता होती है। छोटे किसान अपने परिवारों के साथ अपने खेतों में स्वयं काम करते हैं। इस तरह, वे खेती के लिए आवश्यक श्रम की व्यवस्था स्वयं ही करते हैं। मझोले और बड़े किसान अपने खेतों में काम करने के लिए दूसरे श्रमिकों को किराये पर लगाते है।

खेतों में काम करने के लिए श्रमिक या तो भूमिहीन परिवारों से आते हैं या बहुत छोटे प्लॉटों में खेती करने वाले परिवारों से। खेतों में काम करने वाले श्रमिकों का उगाई गई फसल पर कोई अधिकार नहीं होता, जैसा किसानों का होता है, बल्कि उन्हें उन किसानों द्वारा मजदूरी मिलती है जिनके लिए वे काम करते हैं। मजदूरी नकद या वस्तु जैसे-अनाज के रूप में हो सकती है। कभी-कभी श्रमिकों को भोजन भी मिलता है।

NOTES

मजदूरी एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र, एक फसल से दूसरी फसल और खेत में एक से दूसरे कृषि कार्य (जैसे बुआई और कटाई) के लिए अलग-अलग होती है। रोजगार की अवधि में भी काफी भिन्नताएँ हैं। खेत में काम करने वाले श्रमिक या तो दैनिक मजदूरी के आधार पर कार्य करते हैं या उन्हें कार्य विशेष जैसे कटाई या पूरे साल के लिए काम पर रखा जा सकता है।

खेतों के लिए आवश्यक पूँजी

खेती के आधुनिक तरीकों के लिए बहुत अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है, अतः किसानों को पहले की अपेक्षा ज्यादा पैसा चाहिए।

अधिसंख्य छोटे किसानों को पूँजी की व्यवस्था करने के लिए पैसा उधार लेना पड़ता है। वे बड़े किसानों से या गाँव के साहूकारों से या खेती के लिए विभिन्न आगतों की पूर्ति करने वाले व्यापारियों से कर्ज लेते है। ऐसे कर्जों पर ब्याज की दर बहुत ऊँची होती है। कर्ज चुकाने के लिए उन्हें बहुत कष्ट सहने पड़ते हैं।

छोटे किसानों के विपरीत, मझोले और बड़े किसानों को खेती से बचत होती है। इस तरह वे आवश्यक पूँजी की व्यवस्था कर लेते है।

उत्पादन के तीन कारकों में श्रम उत्पादन का सर्वाधिक प्रचुर मात्रा में उपलब्ध कारक है। ऐसे अनेक लोग है, जो गाँवों में खेतिहर मजदूरों के रूप में काम करने को तैयार है, जबकि काम के अवसर सीमित हैं। वे या तो भूमिहीन परिवारों से हैं या निर्धन है। उन्हें बहुत कम मजदूरी मिलती है और वे एक कठिन जीवन जीते हैं।

श्रम के विपरीत, भूमि उत्पादन का एक दुर्लभ कारक हैं। कृषि भूमि का क्षेत्र सीमित है। इसके अतिरिक्त उपलब्ध भूमि भी असमान रूप से खेती में लगे लोगों में वितरित है। ऐसे कई छोटे किसान हैं जो भूमि के छोटे टुकड़ों पर खेती करते हैं और जिनकी स्थिति भूमिहीन खेतिहर मजदूरों से बेहतर नहीं है। उपलब्ध भूमि का अधिकतम प्रयोग करने के लिए किसान उन्नत बीज और रासायनिक खाद, उर्वरक कीटनाशक का उपयोग करते हैं। इन दोनों से फसलों के उत्पादन में वृद्धि हुई है।

खेती की आधुनिक विधियों में पूँजी की अत्यधिक आवश्यकता होती है। छोटे किसानों को सामान्यतः पूँजी की व्यवस्था करने के लिए पैसा उधार लेना पड़ता है और कर्ज चुकाने के लिए उन्हें बहुत कष्ट सहने पड़ते हैं। इसलिए, विशेष रूप से छोटे किसानों के लिए पूँजी भी उत्पादन का एक दुर्लभ कारक है।

यद्यपि भूमि और पूँजी दोनों दुर्लभ हैं, उत्पादन के इन दोनों कारकों में एक मूल अंतर है। भूमि प्राकृतिक संसाधन है, जबकि पूँजी मानव निर्मित है। पूँजी को बढ़ाना संभव है, जबकि भूमि स्थिर है। इसलिए, यह बहुत आवश्यक है कि हम भूमि और खेती में प्रयुक्त अन्य प्राकृतिक संसाधनों की अच्छी तरह देखभाल करें।

बड़े और मझोले किसान भी खेती के अधिशेष कृषि उत्पादों को बेचते हैं। कमाई के एक भाग को अगले मौसम के लिए पूँजी की व्यवस्था के लिए बचा कर रखा जाता है। इस तरह वे अपनी खेती के लिए पूँजी की व्यवस्था अपनी ही बचतों से कर लेते हैं। कुछ किसान बचत का उपयोग पशु, ट्रक आदि खरीदने अथवा दुकान खोलने में भी करते हैं। इन सबको गैर-कृषि कार्यों के लिए पूँजी कहते हैं।

निष्कर्षः-

गाँव में खेती मुख्य उत्पादन क्रिया है। पिछले वर्षों में खेती की विधियों में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। इनकी वजह से किसान ही भूमि से अधिक फसल पैदा करने लगे हैं। यह एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है, क्योंकि भूमि स्थायी तथा दुर्लभ है। उत्पादन को बढ़ाने के लिए भूमि और अन्य प्राकृतिक संसाधनों पर बहुत अधिक दबाव पड़ा है।

NOTES

खेती की नयी विधियों में कम भूमि परंतु अधिक पूँजी की जरूरत पड़ती है। मझोले और बड़े किसान अपने उत्पादन से हुई बचत से अगले मौसम के लिए पूँजी की व्यवस्था कर लेते हैं। दूसरी ओर, छोटे किसानों के लिए, जो भारत में किसानों की कुल संख्या का 80 प्रतिशत भाग है, पूँजी की व्यवस्था करना बहुत कठिन है। उनके भूखंड का आकार छोटा होने के कारण उनका उत्पादन पर्याप्त नहीं होता। अतिरिक्त साधनों की कमी के कारण वे अपनी बचत से पूँजी नहीं निकाल पाते, अतः उन्हें कर्ज लेना पड़ता है। कर्ज के अतिरिक्त कई छोटे किसानों को अपने व अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए खेतिहर मजदूरों के रूप में अतिरिक्त काम करना पड़ता है।

श्रम पूर्ति उत्पादन के अन्य कारकों की तुलना में सबसे अधिक प्रचुर है, अतः नयी विधियों में श्रम का अधिक प्रयोग करना आदर्श होता किन्तु दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं हुआ। खेती में श्रमिकों का उपयोग सीमित है। अवसरों की तलाश में श्रमिक आस-पड़ोस के गाँवों, शहरों तथा कस्बों में जा रहे हैं। कुछ श्रमिकों ने गाँव में ही गैर-कृषि क्षेत्र में काम करना प्रारंभ कर दिया है।

इस समय गाँव में गैर-कृषि क्षेत्रक बहुत बड़ा नहीं है। भारत में ग्रामीण क्षेत्र के 100 कामगारों में से केवल 24 ही गैर-कृषि कार्यों में लगे हैं। यद्यपि, गाँव में अनेक प्रकार के गैर-कृषि कार्य होते हैं लेकिन प्रत्येक कार्य में नियुक्त लोगों की संख्या बहुत ही कम है।

हम चाहेंगे कि भविष्य में गाँव में गैर-कृषि उत्पादन क्रियाओं में भी वृद्धि हो। खेती के विपरीत, गैर-कृषि कार्यों में कम भूमि की आवश्यकता होती है। लोग कम पूँजी से भी गैर-कृषि कार्य प्रारंभ कर सकते हैं। इस पूँजी को प्राप्त कैसे किया जाता है? या तो अपनी ही बचत का प्रयोग किया जाता है, या फिर कर्ज लिया जाता है। आवश्यकता है कि कर्ज ब्याज की कम दर पर उपलब्ध हों, ताकि बिना बचत वाले लोग भी गैर-कृषि कार्य शुरू कर सकें। गैर-कृषि कार्यों के प्रसार के लिए यह भी आवश्यक है कि ऐसे बाजार हों, जहाँ वस्तुएँ और सेवाएँ बेची जा सकें। जैसे-जैसे ज्यादा गाँव, कस्बों और शहरों से अच्छी सड़कों, परिवहन और टेलीफोन से जुड़ेंगे, भविष्य में गाँवों में गैर-कृषि उत्पादन क्रियाओं के अवसर बढ़ेंगे।

■■■

KOTHARI
GROUP OF INSTITUTIONS

NOTES

इकाई-2 : मानव संसाधन और मानव पूँजी

जब शिक्षा, प्रशिक्षण और चिकित्सा सेवाओं में निवेश किया जाता है तो जनसंख्या मानव पूँजी में बदल जाती है। वास्तव में मानव पूँजी, कौशल और उनमें निहित उत्पादन के ज्ञान का स्टॉक है।

मानव संसाधन

मानव संसाधन वर्तमान उत्पादन कौशल और क्षमताओं के संदर्भ में किसी देश के कार्यरत लोगों का वर्णन करने का एक तरीका है। उत्पादक पहलू की दृष्टि से जनसंख्या पर विचार करना सकल राष्ट्रीय उत्पाद के सृजन में उनके योगदान की क्षमता पर बल देता है। दूसरे संसाधनों की भाँति ही जनसंख्या भी एक संसाधन है- 'एक मानव संसाधन'। यह विशाल जनसंख्या का एक सकारात्मक पहलू है, जिसे प्रायः उस वक्त अनदेखा कर दिया जाता है जब हम इसके नकारात्मक पहलू को देखते हैं, जैसे भोजन, शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं की जनसंख्या तक पहुँच से संबंधित समस्याओं पर विचार करते समय।

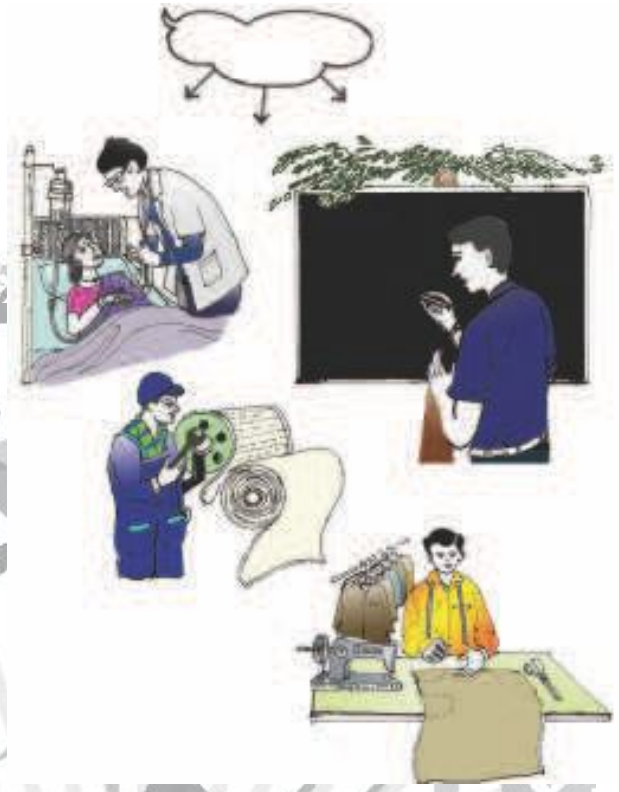

चित्र : मानव पूँजी

जब इस विद्यमान मानव संसाधन को और अधिक शिक्षा तथा स्वास्थ्य द्वारा और अधिक विकसित किया जाता है, तब हम इसे मानव पूँजी निर्माण कहते हैं, जो भौतिक पूँजी निर्माण की ही भाँति देश की उत्पादक शक्ति में वृद्धि करता है।

मानव पूँजी में निवेश (शिक्षा, प्रशिक्षण और स्वास्थ्य सेवा के द्वारा) भौतिक पूँजी की ही भाँति प्रतिफल प्रदान करता है। अधिक शिक्षित या बेहतर प्रशिक्षित लोगों की उच्च उत्पादकता के कारण होने वाली अधिक आय और साथ ही अधिक स्वस्थ लोगों की उच्च उत्पादकता के रूप में इसे प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है।

भारत की हरित क्रांति एक उदाहरण है कि किस प्रकार बेहतर उत्पादन प्रौद्योगिकी के रूप में अधिक ज्ञान रूपी आगत दुर्लभ भूमि संसाधन की उत्पादकता में तीव्र वृद्धि ला सकता है। भारत में सूचना प्रौद्योगिकी में क्रांति एक आश्चर्यजनक उदाहरण है कि भौतिक मशीनरी तथा प्लांट की अपेक्षा मानव पूंजी के महत्व ने किस प्रकार उच्च स्थान प्राप्त कर लिया है।

उच्च आय से न केवल अधिक शिक्षित और अधिक स्वस्थ लोगों को लाभ होता है बल्कि समाज को भी अप्रत्यक्ष तरीकों से लाभ होता है, क्योंकि अधिक शिक्षित या अधिक स्वस्थ जनसंख्या का लाभ उन लोगों तक भी पहुँचता है जो स्वयं प्रत्यक्ष रूप से उतने शिक्षित नहीं है या उतनी स्वास्थ्य सेवाएँ उन्हें प्रदान नहीं की गई है। वास्तव में, मानव पूँजी एक तरह से अन्य संसाधनों जैसे, भूमि और भौतिक पूँजी से श्रेष्ठ है, क्योंकि मानव संसाधन भूमि और पूँजी का उपयोग कर सकता है। भूमि और पूँजी अपने आप उपयोग नहीं हो सकते।

KOTHARI GROUP OF INSTITUTIONS

NOTES

अनेक दशकों से भारत में विशाल जनसंख्या को एक परिसंपत्ति की अपेक्षा एक दायित्व माना जाता रहा है। लेकिन, यह आवश्यक नहीं कि एक विशाल जनसंख्या देश के लिए दायित्व ही हो। मानव पूँजी में निवेश द्वारा इसे एक उत्पादक परिसंपत्ति में बदला जा सकता है। (उदाहरण के लिए, सबके लिए शिक्षा और स्वास्थ्य, आधुनिक प्रौद्योगिकी के प्रयोग में औद्योगिक और कृषि श्रमिकों के प्रशिक्षण, उपयोगी वैज्ञानिक अनुसंधान आदि पर संसाधनों के व्यय द्वारा)।

मानव संसाधन में (शिक्षा और चिकित्सा सेवा के द्वारा) निवेश से भविष्य में उच्च प्रतिफल प्राप्त हो सकते हैं। लोगों में यह निवेश भूमि और पूँजी में निवेश की ही तरह है।

एक बच्चा भी, जिसकी शिक्षा और स्वास्थ्य पर निवेश किया गया है, भविष्य में उच्च आय और समाज को वृहद योगदान के रूप में अधिक प्रतिफल दे सकता है। यह देखा जाता है कि शिक्षित माँ-बाप अपने बच्चों की शिक्षा पर अधिक निवेश करते हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि उन्होंने स्वयं भी शिक्षा के महत्व को अनुभव किया होता है। वे उचित पोषण और स्वच्छता के प्रति भी सचेत होते हैं। इसी प्रकार वे अपने बच्चों की स्कूली शिक्षा और अच्छे स्वास्थ्य की आवश्यकताओं का भी ध्यान रखते हैं। इस तरह इस मामले में एक अच्छा चक्र बन जाता है। इसके विपरीत, स्वयं भी अशिक्षित और अस्वच्छता तथा सुविधावंचित स्थिति में रहने वाले माँ-बांप एक दुष्चक्र सृजित कर लेते हैं और अपने बच्चों को अपनी ही तरह सुविधाओं से वंचित स्थिति में रखते हैं।

जापान जैसे देशों ने मानव संसाधन पर निवेश किया है। उनके पास कोई प्राकृतिक संसाधन नहीं था। यह विकसित धनी देश है। वे अपने देश के लिए आवश्यक प्राकृतिक संसाधनों का आयात करते हैं। वे कैसे धनी/विकसित बनें? उन्होंने लोगों में विशेष रूप से शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में निवेश किया। उन लोगों ने भूमि और पूँजी जैसे अन्य संसाधनों का कुशल उपयोग किया है। इन लोगों ने जो कुशलता और प्रौद्योगिकी विकसित की उसी से ये देश धनी/विकसित बने।

अर्थव्यवस्था के क्षेत्र

अर्थव्यवस्था को तीन मुख्य क्षेत्रों प्राथमिक,द्वितीयक और तृतीयक में वर्गीकृत किया गया है। प्राथमिक क्षेत्रक के अंतर्गत कृषि, वानिकी, पशुपालन, मत्स्यपालन, मुर्गीपालन और खनन एवं उत्खनन शामिल हैं। द्वितीयक क्षेत्रक में विनिर्माण शामिल है। तृतीयक क्षेत्र में व्यापार, परिवहन, संचार, बैंकिंग, बीमा, शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यटन सेवाएँ इत्यादि शामिल किए जाते हैं। इस क्षेत्रक में क्रियाकलाप के फलस्वरूप वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन होता है। ये क्रियाकलाप राष्ट्रीय आय में मूल्य-वर्धन करते हैं। ये क्रियाएँ आर्थिक क्रियाएँ कहलाती हैं। आर्थिक क्रियाओं के दो भाग होते हैं- बाजार क्रियाएँ और गैर-बाजार क्रियाएँ। बाजार क्रियाओं में वेतन या लाभ के उद्देश्य से की गई क्रियाओं के लिए पारिश्रमिक का भुगतान किया जाता है। इनमें सरकारी सेवा सहित वस्तु या सेवाओं का उत्पादन शामिल है। गैर-बाजार क्रियाओं से अभिप्राय स्व-उपभोग के लिए उत्पादन है। इनमें प्राथमिक उत्पादों का उपभोग और प्रसंस्करण तथा अचल संपत्तियों का स्वलेखा उत्पादन आता है।

चित्र- अर्थव्यवस्था के तीन मुख्य क्षेत्र

NOTES

ऐतिहासिक और सांस्कृतिक कारणों से परिवार में महिलाओं और पुरुषों के बीच श्रम का विभाजन होता है। आमतौर पर महिलाएँ घर के काम-काज देखती हैं और पुरुष खेतों में काम करते हैं। महिलाएँ बर्तन साफ़ करती है, कपड़े धोती है, घर की सफाई करती है और अपने बच्चों की देखभाल करती है। पुरुष खेतों में काम करते हैं, उपज को बाजार में बेचते हैं और परिवार के लिए धन कमाते हैं।

महिलाएँ परिवार के पालन-पोषण के लिए जो सेवाएँ प्रदान करती है, उसके लिए उसे कोई भुगतान नहीं किया जाता। पुरुष धन कमाता है, जिसे वह परिवार के पालन-पोषण पर खर्च करता है। परिवार के लिए दी गई सेवाओं के बदले महिलाओं को भुगतान नहीं किया जाता। उनकी सेवाओं को राष्ट्रीय आय में नहीं जोड़ा जाता।

महिलाओं को उनकी सेवाओं के लिए तब भुगतान किया जाता है, जब वे श्रम-बाजार में प्रवेश करती हैं। उनके पुरुष सहयोगी की ही तरह उनकी आय, उनकी शिक्षा और कौशल के आधार पर निर्धारित की जाती है। शिक्षा व्यक्ति के उपलब्ध आर्थिक अवसरों के बेहतर उपयोग में सहायता करती है। शिक्षा और कौशल बाजार में किसी व्यक्ति की आय के प्रमुख निर्धारक हैं। अधिकांश महिलाओं के पाह बहुत कम शिक्षा और निम्न कौशल स्तर हैं। पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं को कम पारिश्रमिक दिया जाता है। अधिकतर महिलाएँ वहाँ काम करती हैं, जहाँ नौकरी की सुरक्षा नहीं होती तथा कानूनी सुरक्षा का अभाव है। अनियमित रोजगार और निम्न आय इस क्षेत्रक की विशेषताएँ हैं। इस क्षेत्रक में प्रसूति अवकाश, शिशु देखभाल और अन्य सामाजिक सुरक्षा तंत्र जैसी सुविधाएँ उपलब्ध नहीं होती। तथापि, उच्च शिक्षा और उच्च कौशल वाली महिलाओं को पुरुषों के बराबर वेतन मिलता है। संगठित क्षेत्रक में शिक्षण और चिकित्सा उन्हें सबसे अधिक आकर्षित करते हैं। कुछ महिलाओं ने सामान्य नौकरियों के अलावा प्रशासनिक और अन्य सेवाओं में प्रवेश किया है, जिनमें वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय सेवा के उच्च स्तर की आवश्यकता पड़ती है।

जनसंख्या की गुणवत्ता

जनसंख्या की गुणवत्ता साक्षरता-दर, जीवन प्रत्याशा से निरूपित व्यक्तियों के स्वास्थ्य और देश के लोगों द्वारा प्राप्त कौशल निर्माण पर निर्भर करती है। जनसंख्या की गुणवत्ता अंततः देश की संवृद्धि दर निर्धारित करती है। साक्षर और स्वस्थ जनसंख्या परिसंपत्तियाँ होती हैं।

शिक्षा

समाज के विकास में भी शिक्षा का योगदान है। यह राष्ट्रीय आय और सांस्कृतिक समृद्धि में वृद्धि करती है और प्रशासन की कार्य -क्षमता बढ़ाती है। प्राथमिक शिक्षा में सार्वजनिक पहुँच, धारण और गुणवत्ता प्रदान करने का प्रावधान किया गया है और इस मामले में लड़कियों पर विशेष जोर दिया गया है। प्रत्येक जिले में नवोदय विद्यालय जैसे प्रगतिनिर्धारक विद्यालयों की स्थापना की गई है। बड़ी संख्या में हाई स्कूल के विद्यार्थियों को ज्ञान और कौशल से संबंधित व्यवसाय उपलब्ध कराने के लिए व्यावसायिक शाखाएँ विकसित की गई है।

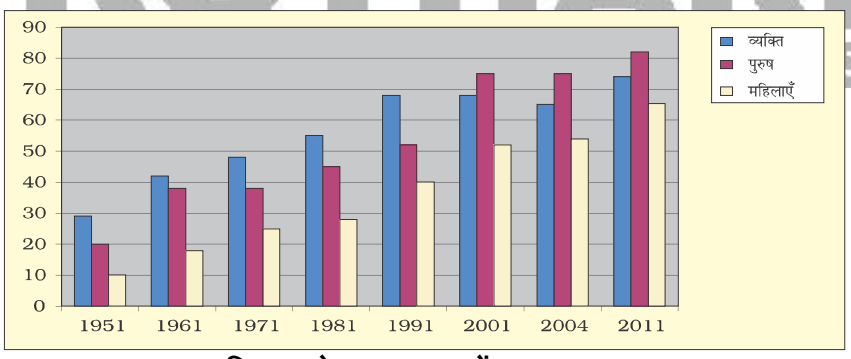

चित्र- आरेख 2.1 भारत में साक्षरता दर

NOTES

व्यक्ति एक सकारात्मक परिसंपत्ति और एक कीमती राष्ट्रीय संसाधन है, जिसे बड़ी सहजता से गतिशीलता और सावधानीपूर्वक संजोने, पोषित करने तथा विकसित करने की आवश्यकता है। प्रत्येक व्यक्ति का विकास समस्याओं और आवश्यकताओं की एक भिन्न श्रृंखला है। इस जटिल और गतिशील विकास प्रक्रिया में शिक्षा की उत्प्रेरक भूमिका को बहुत सावधानी से तैयार करना चाहिए और बड़ी संवेदनशीलता के साथ कार्यान्वित करना चाहिए।

साक्षरता प्रत्येक नागरिक का न केवल अधिकार है बल्कि यह नागरिकों द्वारा अपने कर्तव्यों का ठीक प्रकार से पालन करने तथा अपने अधिकारों का ठीक प्रकार से लाभ उठाने के लिए अनिवार्य भी है। तथापि, जनसंख्या के विभिन्न भागों के बीच व्यापक अंतर पाया जाता है। महिलाओं की अपेक्षा पुरुषों में साक्षरता दर करीब 16.6 प्रतिशत अधिक है और ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा नगरीय क्षेत्रों में साक्षरता दर करीब 16 प्रतिशत अधिक है। वर्ष 2011 में केरल के कुछ जिलों में साक्षरता दर 94 प्रतिशत है जबकि बिहार में 62 प्रतिशत ही है। वर्ष 2013-14 प्राथमिक स्कूली प्रणाली भारत के 8.58 लाख से भी अधिक गाँवों में फैली है। दुर्भाग्यवश, स्कूल शिक्षा के इस विस्तार को शिक्षा के निम्न स्तर और पढ़ाई बीच में छोड़ने की उच्च दर ने कमजोर कर दिया है।

6 से 14 वर्ष आयु वर्ग के सभी स्कूल बच्चों को वर्ष 2010 तक प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने की दिशा में सर्वशिक्षा अभियान एक महत्वपूर्ण कदम है। राज्यों, स्थानीय सरकारों और प्राथमिक शिक्षा सार्वभौमिक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए समुदाय की सहभागिता के साथ केन्द्रीय सरकार की यह एक समयबद्ध पहल है। इसके साथ ही, प्राथमिक शिक्षा में नामांकन बढ़ाने के लिए 'सेतु-पाठ्यक्रम' और 'स्कूल लौटो शिविर' प्रारंभ किए गए हैं। कक्षा में बच्चों की उपस्थिति को बढ़ावा देने, बच्चों के धारण और उनकी पोषण स्थिति में सुधार के लिए दोपहर के भोजन की योजना कार्यान्वित की जा रही है। इन नीतियों से भारत में शिक्षित लोगों की संख्या में वृद्धि हो सकती है।

यह रणनीति बच्चों की शिक्षा तक पहुँच में वृद्धि, गुणवत्ता, राज्यों के लिए विशेष पाठ्यक्रम में परिवर्तन को स्वीकार करना, व्यवसायीकरण तथा सूचना प्रौद्यौगिकी के उपयोग का जाल बिछाने पर केंद्रित है। योजना दूरस्थ शिक्षा, औपचारिक, अनौपचारिक, दूरस्थ तथा संचार प्रौद्योगिकी की शिक्षा देने वाले शिक्षण संस्थानों के अभिसरण पर भी केंद्रित है। पिछले 50 वर्षों में विशेष क्षेत्रों में उच्च शिक्षा देने वाले शिक्षण संस्थानों तथा विश्वविद्यालयों की संख्या में महत्पूर्ण वृद्धि हुई है।

(सारणी) 2.1 : उच्च शिक्षा के संस्थानों की संख्या, नामांकन तथा संकाय

वर्ष	महाविद्यालयों की संख्या	विश्वविद्यालयों की संख्या	विद्यार्थी	शिक्षक यूनिवर्सिटी एवं कॉलेज
1950-51	750	30	2,63,000	24,000
1990-91	7,346	177	49,25,000	2,72,000
1998-99	11,089	238	74,17,000	3,42,000
2010-11	33,023	523	186,70,050	8,16,966
2012-13	37,204	628	233,02,938	9,25,396
2014-15	40,760	711	265,85,437	12,61,350
2015-16	41,435	753	284,84,746	14,38,00

KOTHARI GROUP OF INSTITUTIONS

स्वास्थ्य

फर्म का उद्देश्य लाभ को अधिकतम करना है। कोई भी फर्म ऐसे व्यक्तियों को रोजगार देने के लिए प्रेरित नहीं होगी, जो खराब स्वास्थ्य होने के कारण स्वस्थ श्रमिकों के बराबर कार्य नहीं कर पाएँ?

NOTES

किसी व्यक्ति का स्वास्थ्य उसे अपनी क्षमता को प्राप्त करने और बीमारियों से लड़ने की ताकत देता है। ऐसा कोई भी अस्वस्थ स्त्री/पुरुष संगठन के समग्र विकास में अपने योगदान को अधिकतम करने में सक्षम नहीं होगा। वास्तव में, स्वास्थ्य अपना कल्याण करने का एक अपरिहार्य आधार है। इसलिए जनसंख्या की स्वास्थ्य स्थिति को सुधारना किसी भी देश की प्राथमिकता होती है। हमारी राष्ट्रीय नीति का लक्ष्य भी जनसंख्या के अल्प सुविधा प्राप्त वर्गों पर विशेष ध्यान देते हुए स्वास्थ्य सेवाओं, परिवार कल्याण और पौष्टिक सेवा तक इनकी पहुंच को बेहतर बनाना है। पिछले पाँच दशकों में भारत ने सरकारी और निजी क्षेत्रकों में प्राथमिक, द्वितीयक तथा तृतीयक सेवाओं के लिए अपेक्षित एक विस्तृत स्वास्थ्य आधारिक संरचना और जनशक्ति का निर्माण किया है।

चित्र-स्वास्थ्य की जाँच के लिए एक पंक्ति में खड़े हुए बच्चे

इन उपायों को अपनाने से जीवन प्रत्याशा बढ़ कर वर्ष 2014 में 68.3 वर्ष अधिक हो गई है। शिशु मृत्यु-दर 1951 के 147 से घटकर 2015 में 37 पर आ गई है। इसी अवधि में अशोधित जन्म दर गिर कर 20.8 और मृत्यु-दर 6.5 पर आ गई है। जीवन प्रत्याशा में वृद्धि और शिशु देखभाल में सुधार देश के आत्मविश्वास को, भावि प्रगति के साथ, आंकने के लिए उपयोगी है। आयु में वृद्धि आत्मविश्वास के साथ जीवन की उत्तम गुणवत्ता का सूचक है। शिशुओं की संक्रमण से रक्षा तथा माताओं के साथ बच्चों की देखभाल और पोषण सुनिश्चित करने से शिशु मृत्यु - दर घटती है।

भारत में ऐसे अनेक स्थान हैं जिनमें मौलिक सुविधाएँ भी नहीं हैं। भारत में कुल 381 मेडिकल कॉलेज और 301 डेन्टल कॉलेज हैं केवल चार राज्य जैसे आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र एवं तमिलनाडु में कुल राज्यों से अधिक मेडिकल हैं।

बेरोज़गारी

बेरोज़गारी उस समय विद्यमान कही जाती है, जब प्रचलित मजदूरी की दर पर काम करने के लिए इच्छुक लोग रोजगार नहीं पा सकें।

श्रम बल जनसंख्या में वे लोग शामिल किए जाते हैं, जिनकी उम्र 15 से 59 वर्ष के बीच है।

भारत के संदर्भ में ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों में बेरोजगारी है। तथापि, ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों में बेरोजगारी की प्रकृति में अंतर है। ग्रामीण क्षेत्रों में मौसमी और प्रच्छन्न बेरोजगारी है। नगरीय क्षेत्रों में अधिकांशतः शिक्षित बेरोजगारी है।

मौसमी बेरोज़गारी तब होती है, जब लोग वर्ष के कुछ महीनों में रोज़गार प्रात नहीं कर पाते हैं। कृषि पर आश्रित लोग आमतौर पर इस तरह की समस्या से जूझते हैं। वर्ष में कुछ व्यस्त मौसम होते हैं जब बुआई, कटाई, निराई और गहाई होती है। कुछ विशेष महीनों में कृषि पर आश्रित लोगों को अधिक काम नहीं मिल पाता ।

प्रच्छन्न बेरोज़गारी के अंतर्गत लोग नियोजित प्रतीत होते हैं, उनके पास भूखंड होता है, जहाँ उन्हें काम मिलता है। ऐसा प्रायः कृषिगत काम में लगे परिजनों में होता है। किसी काम में पाँच लोगों की आवश्यकता होती है, लेकिन उसमें आठ लोग लगे होते हैं। इनमें तीन लोग अतिरिक्त हैं। ये तीनों इसी खेत पर काम

NOTES

करते हैं इन तीनों द्वारा किया गया अंशदान पाँच लोगों द्वारा किए गए योगदान में कोई बढ़ोतरी नहीं करता। अगर तीन लोगों को हटा दिया जाए, तो खेत की उत्पादकता में कोई कमी नहीं आएगी। खेत में पाँच लोगों के काम की आवश्यकता है और तीन अतिरिक्त लोग प्रच्छन्न रूप से बेरोज़गार होते हैं।

शहरी क्षेत्रों के मामले में शिक्षित बेरोज़गारी एक सामान्य परिघटना बन गई है। मैट्रिक, स्नातक और स्नातकोत्तर डिग्रीधारी अनेक युवक रोजगार पाने में असमर्थ है। एक अध्ययन में यह बात सामने आई है कि मैट्रिक की तुलना में स्नातक और स्नातकोत्तर युवकों में बेरोज़गारी अधिक तेज़ी से बढ़ी है। एक विरोधाभासी जनशक्ति-स्थिति सामने आई है कि कुछ विशेष श्रेणियों में जनशक्ति के आधिक्य के साथ ही कुछ अन्य श्रेणियों में जनशक्ति की कमी विद्यमान है। एक ओर तकनीकी अर्हता प्राप्त लोगों के बीच बेरोज़गारी है, तो दूसरी ओर आर्थिक संवृद्धि के लिए आवश्यक तकनीकी कौशल की कमी भी है।

बेरोज़गारी से जनशक्ति संसाधन की बर्बादी होती है। युवकों में निराशा और हताशा की भावना बढ़ती है। लोगों के पास अपने परिवार का भरण-पोषण करने के लिए पर्याप्त मुद्रा नहीं होती । शिक्षित लोगों के साथ, जो कार्य करने के इच्छुक हैं और सार्थक रोजगार प्राप्त करने में समर्थ नहीं है, यह एक बड़ा सामाजिक अपव्यय है।

बेरोज़गारी से आर्थिक बोझ में वृद्धि होती है। कार्यरत जनसंख्या पर बेरोज़गारों की निर्भरता बढ़ती है। किसी व्यक्ति और साथ ही साथ समाज के जीवन की गुणवत्ता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। जब किसी परिवार को मात्र जीवन-निर्वाह स्तर पर रहना पड़ता है, तो उसके स्वास्थ्य स्तर में एक आम गिरावट आती है और स्कूल प्रणाली से अलगाव में वृद्धि होती है।

इसलिए, किसी अर्थव्यवस्था के समग्र विकास पर बेरोजगारी का अहितकर प्रभाव पड़ता है। बेरोज़गारी में वृद्धि मंदीग्रस्त अर्थव्यवस्था का सूचक है। यह संसाधनों की बर्बादी भी करता है, जिन्हें उपयोगी ढंग से नियोजित किया जा सकता था। अगर लोगों को संसाधन के रूप में प्रयोग नहीं किया जा सका, तो वे स्वाभाविक रूप से अर्थव्यवस्था के लिए दायित्व बन जाएँगे।

सांख्यिकीय रूप से भारत में बेरोज़गारी की दर निम्न है। बड़ी संख्या में निम्न आय और निम्न उत्पादकता वाले लोगों की गिनती नियोजित लोगों में की जाती है। वे पूरे वर्ष काम करते प्रतीत होते हैं, लेकिन उनकी क्षमता और आय के हिसाब से यह उनके लिए पर्याप्त नहीं है। वे काम तो कर रहे हैं, पर ऐसा प्रतीत होता है कि ये काम उन पर थोपे हुए हैं। इसलिए शायद वे अपनी पसंद का कोई अन्य काम करना पसंद कर सकते हैं। गरीब लोग बेकार नहीं बैठ सकते। वे किसी भी काम से जुड़ जाना चाहते हैं, चाहे उससे कितनी भी कमाई हो। अपनी इस कमाई से वे किसी तरह जीवन निर्वाह कर पाते हैं।

इसके अतिरिक्त, प्राथमिक क्षेत्रक में स्वरोजगार एक विशेषता है। यद्यपि सभी लोगों की आवश्यकता नहीं होती है, फिर भी पूरा परिवार खेतों में काम करता है। इस तरह कृषि क्षेत्रक में प्रच्छन्न बेरोज़गारी होती है। लेकिन, जो भी उत्पादन होता है उसमें पूरे परिवार की हिस्सेदारी होती है। खेत के काम में साझेदारी और उत्पादित फसल में हिस्सेदारी की धारणा ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोज़गारी की कठिनाइयों में कमी लाती है। लेकिन, इससे परिवार की गरीबी कम नहीं होती और प्रत्येक परिवार से अधिशेष श्रमिक रोज़गार की तलाश में गाँवों से शहरों की ओर प्रवास करते हैं।

अर्थव्यवस्था के प्राथमिक क्षेत्र में श्रम का सबसे अधिक अवशोषण करने वाला क्षेत्रक कृषि है। पिछले वर्षों में कृषि पर जनसंख्या की निर्भरता में कुछ कमी आई है। कृषि अधिशेष श्रम का कुछ भाग द्वितीयक या तृतीयक क्षेत्रक में चला गया है। द्वितीयक क्षेत्रक में छोटे पैमाने पर होने वाले विनिर्माण में श्रम का सबसे अधिक अभिशोषण है। तृतीयक क्षेत्रक में जैव-प्रौद्योगिकी, सूचना प्रौद्योगिकी आदि जैसी विभिन्न नयी सेवाएँ सामने आ रही हैं।

■■■

NOTES

इकाई-3 : निर्धनता

निर्धन व्यक्ति भूमिहीन श्रमिक भी हो सकते हैं और शहरों की भीड़ भरी झुग्गियों में रहने वाले लोग भी। वे निर्माण-स्थलों के दैनिक वेतनभोगी श्रमिक भी हो सकते हैं और ढाबों में काम करने वाले बाल-श्रमिक भी। वे चिथड़ों में बच्चे उठाए भिखारी भी हो सकते हैं। हम अपने चारों ओर निर्धनता देखते हैं। वास्तव में, देश का हर चौथा व्यक्ति निर्धन है।

इसका अर्थ यह है कि विश्व में भारत में सबसे अधिक निर्धनों का संकेंद्रण है। यह इस चुनौती की गंभीरता को दर्शाता है।

भारत में निर्धनता के निम्नलिखित कारण है-

- भूमिहीनता
- बेरोज़गारी
- परिवार का आकार
- निरक्षरता
- खराब स्वास्थ्य / कुपोषण
- बाल-श्रम
- असहायता

निर्धनता का अर्थ स्वच्छ जल और सफ़ाई सुविधाओं का अभाव भी है। इसका अर्थ नियमित रोजगार की कमी भी है तथा न्यूनतम शालीनता स्तर का अभाव भी है। अंततः इसका अर्थ है असहायता की भावना के साथ जीना। निर्धन लोग ऐसी स्थिति में रहते हैं जिसमें उनके साथ खेतों, कारखानों, सरकारी कार्यालयों, अस्पतालों, रेलवे स्टेशनों और लगभग सभी स्थानों पर दुर्व्यवहार होता है। स्पष्ट है कि कोई भी निर्धनता में जीना नहीं चाहता ।

अपने करोड़ो लोगों को दयनीय निर्धनता से बाहर निकालना स्वतंत्र भारत की सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक रही है।

सामाजिक वैज्ञानिकों की दृष्टि में निर्धनता

चूँकि निर्धनता के अनेक पहलू हैं, सामाजिक वैज्ञानिक उसे अनेक सूचकों के माध्यम से देखते हैं। सामान्यतया प्रयोग किए जाने वाले सूचक वे हैं, जो आय और उपभोग के स्तर से संबंधित हैं, लेकिन अब निर्धनता को निरक्षरता स्तर, कुपोषण के कारण रोग प्रतिरोधी क्षमता की कमी, स्वास्थ्य सेवाओं की कमी, रोजगार के अवसरों की कमी, सुरक्षित पेयजल एवं स्वच्छता तक पहुंच की कमी आदि जैसे अन्य सामाजिक सूचकों के माध्यम से भी देखा जाता है। सामाजिक अपवर्जन और असुरक्षा पर आधारित निर्धनता का विश्लेषण अब बहुत सामान्य होता जा रहा है।

सामाजिक अपवर्जन

इस अवधारणा के अनुसार निर्धनता को इस संदर्भ में देखा जाना चाहिए कि निर्धनों को बेहतर माहौल और अधिक अच्छे वातावरण में रहने वाले संपन्न लोगों की सामाजिक समता से अपवर्जित रहकर केवल निकृष्ट वातावरण में दूसरे निर्धनों के साथ रहना पड़ता है।

सामान्य अर्थ में सामाजिक अपवर्जन निर्धनता का एक कारण और परिणाम दोनों हो सकता है। मोटे तौर पर यह एक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति या समूह उन सुविधाओं, लाभों और अवसरों से अपवर्जित रहते हैं, जिनका उपभोग दूसरे (उनसे 'अधिक अच्छे') करते हैं। इसका एक विशिष्ट उदाहरण भारत में जाति-व्यवस्था की कार्य-शैली है, जिसमें कुछ जातियों के लोगों को समान अवसरों से अपवर्जित रखा जाता है। इस प्रकार, सामाजिक अपवर्जन लोगों की आय ही बहुत कम नहीं करता बल्कि यह इससे भी कहीं अधिक क्षति पहुँचा सकता है।

NOTES

निर्धनता रेखा

निर्धनता पर चर्चा के केन्द्र में सामान्यतया 'निर्धनता रेखा' की अवधारणा होती है। निर्धनता के आकलन की एक सर्वमान्य सामान्य विधि आय अथवा उपभोग स्तरों पर आधारित है। किसी व्यक्ति को निर्धन माना जाता है, यदि उसकी आय या उपभोग स्तर किसी ऐसे 'न्यूनतम स्तर' से नीचे गिर जाए जो मूल आवश्यकताओं के एक दिए हुए समूह को पूर्ण करने के लिए आवश्यक है। मूल आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए आवश्यक वस्तुएँ विभिन्न कालों एवं विभिन्न देशों में भिन्न हैं। अतः काल एवं स्थान के अनुसार निर्धनता रेखा भिन्न हो सकती है। प्रत्येक देश एक काल्पनिक रेखा का प्रयोग करता है, जिसे विकास एवं उसके स्वीकृत न्यूनतम सामाजिक मानदण्डों के वर्तमान स्तर के अनुरूप माना जाता है। उदाहरण के लिए अमेरिका में उस आदमी को निर्धन माना जाता है जिसके पास कार नहीं है, जबकि भारत में अब भी कार रखना विलासिता मानी जाती है।

भारत में निर्धनता रेखा का निर्धारण करते समय जीवन निर्वाह के लिए खाद्य आवश्यकता, कपड़ों, जूतों, ईंधन और प्रकाश, शैक्षिक एवं चिकित्सा संबंधि आवश्यकताओं आदि पर विचार किया जाता है। इन भौतिक मात्राओं को रूपयों में उनकी कीमतों से गुणा कर दिया जाता है। निर्धनता रेखा का आकलन करते समय खाद्य आवश्यकता के लिए वर्तमान सूत्र वांछित कैलोरी आवश्यकताओं पर आधारित है। खाद्य वस्तुएँ जैसे- अनाज, दालें, सब्ज़ियाँ, दूध, तेल, चीनी आदि मिलकर इस आवश्यक कैलोरी की पूर्ति करती हैं। आयु, लिंग, काम करने की प्रकृति आदि के आधार पर कैलोरी आवश्यकताएँ बदलती रहती हैं। भारत में स्वीकृत कैलोरी आवश्यकता ग्रामीण क्षेत्रों में 2400 कैलोरी प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन एवं नगरीय क्षेत्रों में 2100 प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन है। चूँकि ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोग अधिक शारीरिक कार्य करते हैं, अतः ग्रामीण क्षेत्रों में कैलोरी आवश्यकता शहरी क्षेत्रों की तुलना में अधिक मानी गई है। अनाज आदि के रूप में इन कैलोरी आवश्यकताओं को खरीदने के लिए प्रतिव्यक्ति मौद्रिक व्यय को, कीमतों में वृद्धि को ध्यान में रखते हुए, समय-समय पर संशोधित किया जाता है।

इन परिकल्पनाओं के आधार पर वर्ष 2011-12 में किसी व्यक्ति के लिए निर्धनता रेखा का निर्धारण ग्रामीण क्षेत्रों में 816 रूपये प्रतिमाह और शहरी क्षेत्रों में 1000 रूपये प्रतिमाह किया गया था। कम कैलोरी की आवश्यकता के बावजूद शहरी क्षेत्रों के लिए उच्च राशि निश्चित की गई, क्योंकि शहरी क्षेत्रों में अनेक आवश्यक वस्तुओं की कीमतें अधिक होती हैं। इस प्रकार, वर्ष 2011-12 में ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाला पाँच सदस्यों का परिवार निर्धनता रेखा के नीचे होगा, यदि उसकी आय लगभग 4,080 रूपये प्रतिमाह से कम है। इसी तरह के परिवार को शहरी क्षेत्रों में अपनी मूल आवश्यकताएँ पूरा करने के लिए कम से कम 5,000- रूपये प्रतिमाह की आवश्कयकता होगी। निर्धनता रेखा का आकलन समय-समय पर (सामान्यतः हर पाँच वर्ष पर) प्रतिदर्श सर्वेक्षण के माध्यम से किया जाता है। यह सर्वेक्षण **राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन** अर्थात् नेशनल सेंपल सर्वे ऑर्गनाइज़ेशन (एन.एस.एस.ओ.) द्वारा कराए जाते हैं, तथापि विकासशील देशों के बीच तुलना करने के लिए विश्व बैंक जैसे अनेक अंतर्राष्ट्रीय संगठन निर्धनता रेखा के लिए एक समान मानक का प्रयोग करते हैं, जैसे $ 1.9 (2011 पी.पी.पी.) प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन के समतुल्य न्यूनतम उपलब्धता के आधार पर।

तालिका 3.1 निर्धनता आरेख

	निर्धनता अनुपात (प्रतिशत)			निर्धनों की संख्या (करोड़)		
वर्ष	ग्रामीण	शहरी	योग	ग्रामीण	शहरी	संयुक्त योग
1993-94	507	32	45	329	75	404
2004-05	42	26	37	326	81	407
2009-10	34	21	30	278	76	355
2011-12	26	14	22	217	53	270

KOTHARI GROUP OF INSTITUTIONS

NOTES

निर्धनता के अनुमान

निर्धनता आरेख से यह स्पष्ट है कि भारत में निर्धनता अनुपात में वर्ष 1993-94 में लगभग 45 प्रतिशत से वर्ष 2004-05 में 37.2 प्रतिशत तक महत्वपूर्ण गिरावट आई है। वर्ष 2011-12 में निर्धनता रेखा के नीचे के निर्धनों का अनुपात और भी गिर कर 22 प्रतिशत पर आ गया । यदि यही प्रवृत्ति रही तो अगले कुछ वर्षों में निर्धनता रेखा से नीचे के लोगों की संख्या 20 प्रतिशत से भी नीचे आ जाएगी। यद्यपि निर्धनता रेखा से नीचे रहने वाले लोगों का प्रतिशत पूर्व के दो दशकों (1973-93) में गिरा है, निर्धन लोगों की संख्या वर्ष 2004-05 में 407 मिलियन से गिरकर 270 मिलियन वर्ष 2011-12 जिसमें औसतन गिरावट 2.2 प्रतिशत वर्ष 2004-05 से 2011-12 के बीच में हुई है।

अंतर्राज्यीय असमानताएँ

भारत में निर्धनता का एक और पहलू या आयाम है। प्रत्येक राज्य में निर्धन लोगों का अनुपात एक समान नहीं है। यद्यपि 1970 के दशक के प्रारंभ से राज्य स्तरीय निर्धनता में सुदीर्घकालिक कमी हुई है, निर्धनता कम करने में सफलता की दर विभिन्न राज्यों में अलग-अलग है। वर्ष 2011-12 में भारत में निर्धनता अनुपात 22 प्रतिशत है। कुछ राज्य जैसे- मध्य प्रदेश, असम, उत्तर प्रदेश, बिहार एवं ओडिशा में निर्धनता अनुपात राष्ट्रीय अनुपात से ज्यादा है। बिहार और ओडिशा क्रमशः 33.7 और 32.6 प्रतिशत निर्धनता औसत के साथ दो सर्वाधिक निर्धन राज्य बने हुए हैं। ओडिशा, मध्य प्रदेश, बिहार और उत्तर प्रदेश में ग्रामीण निर्धनता के साथ नगरीय निर्धनता भी अधिक है।

वैश्विक निर्धनता परिदृश्य

विकासशील देशों में अत्यंत आर्थिक निर्धनता (विश्व बैंक की परिभाषा के अनुसार प्रतिदिन $ 1.9 से कम पर जीवन निर्वाह करना) में रहने वाले लोगों का अनुपात 1990 के 35 प्रतिशत से गिर कर 2013 में 10.68 प्रतिशत हो गया है। यद्यपि वैश्विक निर्धनता में उल्लेखनीय गिरावट आई है, लेकिन इसमें बहुत क्षेत्रीय भिन्नताएँ पाई जाती हैं। तीव्र आर्थिक प्रगति और मानव संसाधन विकास में बृहत निवेश के कारण चीन और दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में निर्धनता में विशेष कमी आई है। चीन में निर्धनों की संख्या 1981 के 88.3 प्रतिशत से घटकर 2008 में 14.7 प्रतिशत और वर्ष 2013 में 1.9 प्रतिशत रह गई है। दक्षिण एशिया के देशों (भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका, नेपाल, बांग्लादेश, भूटान) में निर्धनों की संख्या में गिरावट इतनी ही तीव्र रही है और 54 प्रतिशत से गिरकर 15% हो गई है। निर्धनों के प्रतिशत में गिरावट के बावजूद निर्धनों की संख्या में भी कमी आई जो 1990 में 44 प्रतिशत से घटकर 2013 में 17 प्रतिशत रह गई है। भिन्न निर्धनता रेखा परिभाषा के कारण भारत में भी निर्धनता राष्ट्रीय अनुमान से अधिक है।

आरेख 3.2 : भारत के चुनिंदा राज्यों में निर्धनता अनुपात

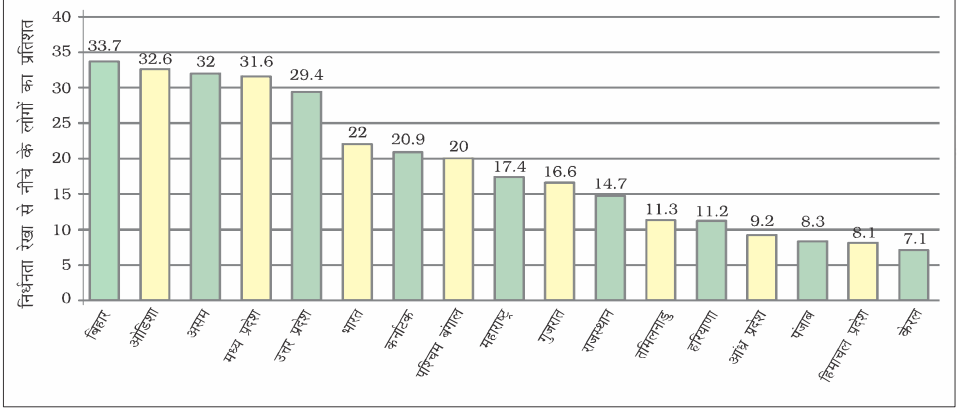

(आरेख 3.2 भारत के चुनिंदा राज्यो में निर्धनता अनुपात, 2015-16)

NOTES

सब-सहारा अफ्रीका में निर्धनता वास्तव में 1991 के 54 प्रतिशत से घटकर 2013 में 41 प्रतिशत हो गई है। लैटिन अमेरिका में निर्धनता का अनुपात वही रहा है। यहाँ पर निर्धनता रेखा 1990 में 16 प्रतिशत से गिरकर 2013 में 5.4 प्रतिशत रह गई है। रूस जैसे पूर्व समाजवादी देशों में भी निर्धनता पुनः व्याप्त हो गई, जहाँ पहले आधिकारिक रूप से कोई निर्धनता थी ही नहीं। अंतर्राष्ट्रीय निर्धनता रेखा (अर्थात $ 1.9 डालर प्रतिदिन से नीचे की जनसंख्या) विभिन्न देशों में निर्धनता के नीचे रहने वाले लोगों का अनुपात दर्शाती है। संयुक्त राष्ट्र के नये सतत् विकास के लक्ष्य के अनुसार 2030 तक सभी प्रकार की गरीबी खत्म करने का प्रस्ताव है।

निर्धनताः कुछ चुनिंदा देशों के बीच तुलना

	देश	प्रतिशत 1.9 डॉलर से कम पाने वालों की संख्या	
1.	नाइजीरिया	53.5	(2009)
2.	बांग्लादेश	18.5	(2010)
3.	भारत	21.2	(2011)
4.	पाकिस्तान	6.1	(2013)
5.	चीन	1.9	(2013)
6.	ब्राज़ील	3.7	(2014)
7.	इंडोनेशिया	8.3	(2014)
8.	श्रीलंका	1.9	(2012)

स्रोत विश्व बैंक के आंकड़े

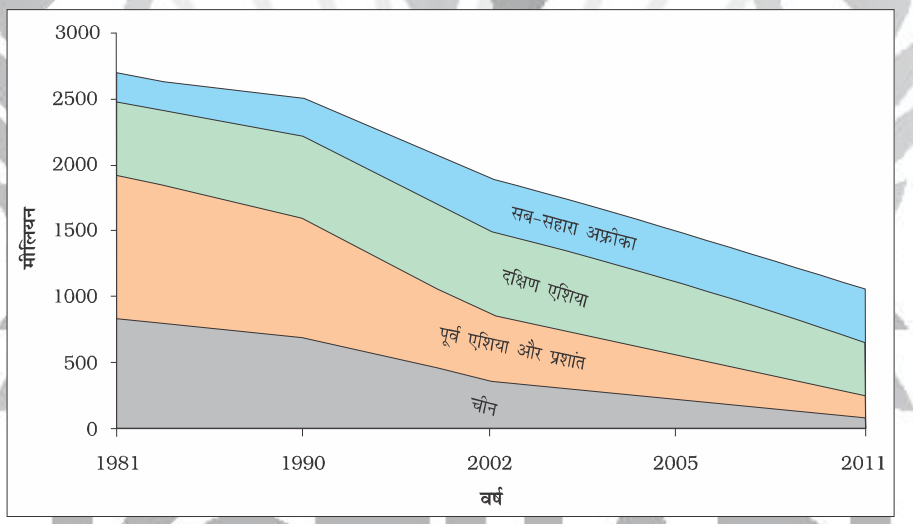

आरेख 3.4 क्षेत्रानुसार निर्धनों की संख्या $ 1.90 प्रतिदिन) मीलियन

निर्धनता के कारण

भारत में व्यापक निर्धनता के अनेक कारण हैं। एक ऐतिहासिक कारण ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन के दौरान आर्थिक विकास का निम्न स्तर है। औपनिवेशिक सरकार की नीतियों ने पारंपरिक हस्तशिल्पकारी को नष्ट कर दिया और वस्त्र जैसे उद्योगों के विकास को हतोत्साहित किया। विकास की धीमी दर 1980 के दशक तक जारी रही। इसके परिणामस्वरूप रोजगार के अवसर घटे और आय की वृद्धि दर गिरी। इसके साथ-साथ जनसंख्या में उच्च दर से वृद्धि हुई है। इन दोनों ने प्रतिव्यक्ति आय की संवृद्धि दर को बहुत कम कर दिया। आर्थिक प्रगति को बढ़ावा और जनसंख्या नियंत्रण, दोनों मोर्चों पर असफलता के कारण निर्धनता का चक्र बना रहा ।

NOTES

सिंचाई और हरित क्रांति के प्रसार से कृषि क्षेत्रक में रोजगार के अनेक अवसर सृजित हुए। लेकिन इनका प्रभाव भारत के कुछ भागों तक ही सीमित रहा। सार्वजनिक और निजी, दोनों क्षेत्रकों ने कुछ रोजगार उपलब्ध कराए। लेकिन ये रोजगार तलाश करने वाले सभी लोगों के लिए पर्याप्त नहीं हो सके। शहरों में उपयुक्त नौकरी पाने में असफल अनेक लोग रिक्शा चालक, विक्रेता, गृह निर्माण श्रमिक, घरेलू नौकर आदि के रूप में कार्य करने लगे। अनियमित और कम आय के कारण ये लोग महँगे मकानों में नहीं रह सकते थे। वे शहरों से बाहर झुग्गियों में रहने लगे और निर्धनता की समस्याएँ जो मुख्य रूप से एक ग्रामीण परिघटना थी, नगरीय क्षेत्र की भी एक विशेषता बन गई ।

उच्च निर्धनता दर की एक और विशेषता आय असमानता रही है। इसका एक प्रमुख कारण भूमि और अन्य संसाधनों का असमान वितरण है। अनेक नीतियों के बावजूद, हम किसी सार्थक ढंग से इस मुद्दे से नहीं निपट सके हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में परिसंपत्तियों के पुनर्वितरण पर लक्षित भूमि सुधार जैसी प्रमुख नीति-पहल को ज्यादातर राज्य सरकारों ने प्रभावी ढंग से कार्यान्वित नहीं किया। चूँकि भारत में भूमि-संसाधनों की कमी निर्धनता का एक प्रमुख कारण रही है, इस नीति का उचित कार्यान्वयन करोड़ों ग्रामीण निर्धनों का जीवन सुधार सकता था। अनेक अन्य सामाजिक- सांस्कृतिक और आर्थिक कारक भी निर्धनता के लिए उत्तरदायी है। अतिनिर्धनों सहित भारत में लोग सामाजिक दायित्वों और धार्मिक अनुष्ठानों के आयोजन में बहुत पैसा खर्च करते हैं। छोटे किसानों को बीज उर्वरक, कीटनाशकों जैसे कृषि आगतों की खरीदारी के लिए धनराशि की ज़रूरत होती है। चूँकि निर्धन कठिनाई से ही कोई बचत कर पाते हैं, वे इनके लिए कर्ज़ लेते हैं। निर्धनता के चलते पुनः भुगतान करने में असमर्थता के कारण वे ऋणग्रस्त हो जाते हैं। अतः अत्याधिक ऋणग्रस्तता निर्धनता का कारण और परिणाम दोनों हैं।

निर्धनता-निरोधी उपाय

निर्धनता उन्मूलन भारत की विकास रणनीति का एक प्रमुख उद्देश्य रहा है। सरकार की वर्तमान निर्धनता-निरोधी रणनीति मोटे तौर पर दो कारकों (1) **आर्थिक संवृद्धि** को प्रोत्साहन और (2) **लक्षित निर्धनता**- निरोधी कार्यक्रमों पर निर्भर है।

1980 के दशक के आरंभ तक समाप्त हुए 30 वर्ष की अवधि के दौरान प्रतिव्यक्ति आय में कोई वृद्धि नहीं हुई और निर्धनता में भी अधिक कमी नहीं आई। 1950 के दशक के आरंभ में आधिकारिक निर्धनता अनुमान 45 प्रतिशत का था और 1980 के दशक के आरंभ में भी वही बना रहा। 1980 के दशक से भारत की आर्थिक संवृद्धि-दर विश्व में सबसे अधिक रही। संवृद्धि-दर 1970 के दशक के करीब 3.5 प्रतिशत के औसत से बढ़कर 1980 और 1990 के दशक में 6 प्रतिशत के करीब पहुँच गई । विकास की उच्च दर ने निर्धनता को कम करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसलिए यह स्पष्ट होता जा रहा है कि आर्थिक संवृद्धि और निर्धनता उन्मूलन के बीच एक घनिष्ठ संबंध है। आर्थिक संवृद्धि अवसरों को व्यापक बना देती है और मानव विकास में निवेश के लिए आवश्यक संसाधन उपलब्ध कराती है। यह शिक्षा में निवेश से अधिक आर्थिक प्रतिफल पाने की आशा में लोगों को अपने बच्चों को लड़कियों सहित स्कूल भेजने के लिए प्रोत्साहित करती है तथापि, यह संभव है कि आर्थिक विकास से सृजित अवसरों से निर्धन लोग प्रत्यक्ष लाभ नहीं उठा सके। इसके अतिरिक्त कृषि क्षेत्रक में संवृद्धि अपेक्षा से बहुत कम रही। निर्धनता पर इसका प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा क्योंकि निर्धन लोगों का एक बड़ा भाग गाँव में रहता है और कृषि आश्रित है।

इन परिस्थितियों में लक्षित निर्धनता-निरोधी कार्यक्रमों की स्पष्ट आवश्यकता है। यद्यपि ऐसी अनेक योजनाएँ हैं जिनको प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से निर्धनता कम करने के लिए बनाया गया, उनमें से कुछ का उल्लेख यहाँ करना आवश्यक है। **महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार अधिनियम 2005 (मनरेगा)** का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविका सुरक्षित करने के लिये हर घर के लिये मजदूरी रोजगार कम से कम 100 दिनों के लिये उपलब्ध कराना है। इसका उद्देश्य सतत् विकास में, मदद करना ताकि सूखा, वन कटाई एवं

NOTES

मिट्टी के कटाव जैसी समस्याओं से बचा जा सके। इस प्रावधान के तहत एक-तिहाई रोजगार महिलाओं के लिये सुरक्षित किया गया है।

इस योजना के अंतर्गत 4.78 करोड़ परिवार को 220 करोड़ प्रतिव्यक्ति रोजगार उपलब्ध कराया गया है। इस योजना के अंतर्गत अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं महिलाओं का हिस्सा क्रमशः 23 प्रतिशत, 17 प्रतिशत एवं 53 प्रतिशत है, औसतन रोजगार वर्ष 2006-07 में 65 रुपये से बढ़ाकर 132 रूपये वर्ष 2013-14 में कर दिया गया है। केन्द्र सरकार **राष्ट्रीय रोजगार गारंटी कोष** भी स्थापित करेगी। इसी तरह राज्य सरकारें भी योजना के कार्यान्वयन के लिए **राज्य रोज़गार गारंटी कोष** की स्थापना करेंगी। कार्यक्रम के अंतर्गत अगर आवेदक को 15 दिन के अंदर रोज़गार उपलब्ध नहीं कराया गया तो वह दैनिक बेरोजगार भत्ते का हकदार होगा। एक और महत्वपूर्ण योजना राष्ट्रीय काम के बदले अनाज कार्यक्रम है जिसे 2004 में देश के सबसे पिछड़े 150 जिलों में लागू किया गया था। यह कार्यक्रम उन सभी ग्रामीण निर्धनों के लिए है, जिन्हें मजदूरी पर रोजगार की आवश्यकता है और जो अकुशल शारीरिक काम करने के इच्छुक हैं। इसका कार्यान्वयन शत-प्रतिशत केंद्रीय वित्तपोषित कार्यक्रम के रूप में किया गया है और राज्यों को खाद्यान्न निःशुल्क उपलब्ध कराए जा रहे हैं। एक बार एन.आर.ई.जी.ए. लागू हो जाए तो काम के बदले अनाज (एन.एफ.डब्ल्यू.पी.) का राष्ट्रीय कार्यक्रम भी इस कार्यक्रम के अंतर्गत आ जाएगा।

प्रधानमंत्री रोज़गार योजना एक अन्य योजना है जिसे जिसे 1993 में आरंभ किया गया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों और छोटे शहरों में शिक्षित बेरोज़गार युवाओं के लिए स्वरोज़गार के अवसर सृजित करना है। उन्हें लघु व्यवसाय और उद्योग स्थापित करने में सहायता दी जाती है। ग्रामीण रोज़गार सृजन कार्यक्रम का आरंभ 1995 में किया गया। इसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों और छोटे शहरों में स्वरोज़गार के अवसर सृजित करना है। दसवीं पंचवर्षीय योजना में इस कार्यक्रम के अंतर्गत 25 लाख नए रोज़गार के अवसर सृजित करने का लक्ष्य रखा गया है। **स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोज़गार योजना** का आरंभ 1999 में किया गया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य सहायता-प्राप्त निर्धन परिवारों को स्वसहायता समूहों में संगठित कर बैंक ऋण और सरकारी सहायिकी के संयोजन द्वारा निर्धनता रेखा से ऊपर लाना है।

प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना (2000 में आरंभ) के अंतर्गत प्राथमिक स्वास्थ्य, प्राथमिक शिक्षा, ग्रामीण आश्रय, ग्रामीण पेयजल और ग्रामीण विद्युतीकरण जैसी मूल सुविधाओं के लिए राज्यों को अतिरिक्त केंद्रीय सहायता प्रदान की जाती है। एक और महत्वपूर्ण योजना **अंत्योदय अन्न योजना** है।

इन कार्यक्रमों के मिले-जुले परिणाम हुए हैं। उनके कम प्रभावी होने का एक मुख्य कारण ुचित कार्यान्वयन और सही लक्ष्य निश्चित करने की कमी है। इसके अतिरिक्त, कुछ योजनाएँ परस्पर-व्यापी भी है। अच्छी नीयत के बावजूद इन योजनाओं के लाभ उनके पात्र, निर्धनों को पूरी तरह नहीं मिल पाए। इसलिए, हाल के वर्षों में निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रमों के उचित परिवीक्षण पर अधिक बल दिया गया है।

भावी चुनौतियाँ

भारत में निर्धनता में निश्चित रूप से गिरावट आई है, लेकिन प्रगति के बावजूद निर्धनता उन्मूलन भारत की एक सबसे बाध्यकारी चुनौती है। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों और विभिन्न राज्यों में निर्धनता में व्यापक असमानता है। कुछ सामाजिक और आर्थिक समूह निर्धनता के प्रति अधिक असुरक्षित हैं। आशा की जा रही है कि निर्धनता उन्मूलन में अगले दस से पन्द्रह वर्षों में अधिक प्रगति होगी। यह मुख्यतः उच्च आर्थिक संवृद्धि, सर्वजनीन निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा पर जोर, जनसंख्या विकास में गिरावट, महिलाओं और समाज के आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के बढ़ते सशक्तीकरण के कारण संभव हो सकेगा।

लोगों के लिए निर्धनता की आधिकारिक परिभाषा उनके केवल एक सीमित भाग पर लागू होती है। यह न्यूनतम जीवन निर्वाह के 'उचित' स्तर की अपेक्षा जीवन विर्वाह के (न्यूनतम) स्तर के विषय में है। अनेक बुद्धिजीवियों ने इसका समर्थन किया है कि निर्धनता की अवधारणा का विस्तार (मानव निर्धनता)

NOTES

तक कर देना चाहिए। हो सकता है कि बड़ी संख्या में लोग अपना भोजन जुटाने में समर्थ हों, लेकिन क्या उनके पास शिक्षा है? या घर है? या आत्मविश्वास है? क्या वे जाति और लिंग आधारित भेदभाव से मुक्त है? क्या बाल श्रम की प्रथा अब भी प्रचलित है? विश्वव्यापी अनुभव बताते हैं कि विकास के साथ निर्धनता की परिभाषा भी बदलती है। निर्धनता उन्मूलन हमेशा एक गतिशील लक्ष्य है। आशा है कि हम अगले दशक के अंत तक सभी लोगों को, केवल आय के संदर्भ में, न्यूनतम आवश्यक आय उपलब्ध करा सकेंगे। सभी को स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा और रोजगार सुरक्षा उपलब्ध कराना, लैंगिक समता तथा निर्धनों का सम्मान जैसी बड़ी चुनौतियाँ हमारे लक्ष्य होंगे। ये और भी बड़े काम होंगे।

निष्कर्ष

निर्धनता के अनेक आयाम हैं । सामान्यतः इसे 'निर्धनता रेखा' की अवधारणा के द्वारा मापा जाता है। इस अवधारणा के द्वारा निर्धनता में मुख्य वैश्विक तथा राष्ट्रीय प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया जाता हैं । परंतु हाल के वर्षों में निर्धनता का विश्लेषण सामाजिक अपवर्जन जैसी अनेक नयी अवधारणाओं के द्वारा समृद्ध हो रहा हैं । इसी प्रकार चुनौतियाँ भी बढ़ती जा रही हैं, क्योंकि विद्वान लोग इस अवधारणा का 'मानव निर्धनता' में विस्तार कर रहे हैं ।

■■■

KOTHARI
GROUP OF INSTITUTIONS

NOTES

इकाई-4 : भारत में खाद्य सुरक्षा

खाद्य सुरक्षा की अवधारणा

खाद्य सुरक्षा का अर्थ है, सभी लोगों के लिए सदैव भोजन की उपलब्धता, पहुँच और उसे प्राप्त करने का सामर्थ्य। जब भी अनाज के उत्पादन या उसके वितरण की समस्या आती है, तो सहज ही निर्धन परिवार इससे अधिक प्रभावित होते हैं। खाद्य सुरक्षा; सार्वजनिक वितरण प्रणाली, शासकीय सतर्कता और खाद्य सुरक्षा के खतरे की स्थिति में सरकार द्वारा की गई कार्यवाही पर निर्भर करती हैं।

खाद्य सुरक्षा क्या हैं ?

जीवन के लिए भोजन उतना ही आवश्यक हैं जितना कि साँस लेने के लिए वायु। लेकिन खाद्य सुरक्षा मात्र दो जून की रोटी पाना नहीं हैं, बल्कि उससे कहीं अधिक हैं। खाद्य सुरक्षा के निम्नलिखित आयाम हैं :

(क) खाद्य उपलब्धता का तात्पर्य देश में खाद्य उत्पादन, खाद्य आयात और सरकारी अनाज भंडारों में संचित पिछले वर्षों के स्टॉक से हैं।

(ख) पहुँच का अर्थ हैं कि खाद्य प्रत्येक व्यक्ति को मिलता रहें।

(ग) पहुँच का अर्थ हैं कि लोगों के पास अपनी भोजन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त और पौष्टिक भोजन खरीदने के लिए धन उपलब्ध हो। किसी देश में खाद्य सुरक्षा केवल तभी सुनिश्चित होती हैं जब (1) सभी लोगों के लिए पर्याप्त खाद्य उपलब्ध हो, (2) सभी लोगों के पास स्वीकार्य गुणवत्ता के खाद्य-पदार्थ खरीदने की क्षमता हो और (3) खाद्य की उपलब्धता में कोई बाधा नहीं हो।

खाद्य सुरक्षा क्यो ?

समाज का अधिक गरीब वर्ग तो हर समय खाद्य असुरक्षा में ग्रस्त हो सकता हैं परन्तु जब देश भूकंप, सूखा, बाढ़, सुनामी, फसलों के खराब होने से पैदा हुए अकाल आदि राष्ट्रीय आपदाओं से गुजर रहा हो, तो निर्धनता रेखा से ऊपर के लोग भी खाद्य असुरक्षा से ग्रस्त हो सकते हैं।

1970 के दशक में खाद्य सुरक्षा का अर्थ था - 'आधारित खाद्य पदार्थों की सदैव पर्याप्त उपलब्धता' (संयुक्त राष्ट्र 1975)। अमर्त्य सेन ने खाद्य सुरक्षा में एक नया आयाम जोड़ा और हकदारियों के आधार पर खाद्य पर पहुँच पर जोर दिया। हकदारियों का अभिप्राय राज्य या सामाजिक रूप से उपलब्ध कराई गई अन्य पूर्तियों के साथ-साथ उन वस्तुओं से है, जिनका उत्पादन और विनिमय बाजार में किसी व्यक्ति द्वारा किया जा सकता हैं। तदनुसार, खाद्य सुरक्षा के अर्थ में काफी परिवर्तन हुआ हैं। विश्व खाद्य शिखर सम्मेलन, 1995 में यह घोषणा की गई कि ''वैयक्तिक'' पारिवारिक, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय तथा वैश्विक स्तर पर खाद्य सुरक्षा का अस्तित्व तभी है, जब सक्रिय और स्वस्थ जीवन व्यतीत करने के लिए आहार संबंधी जरूरतों और खाद्य पदाथों को पूरा करने के लिए पर्याप्त, सुरक्षित एवं पौष्टिक खाद्य तक सभी लोगों की भौतिक एवं आर्थिक पहुँच सदैव हो'' (खाद्य एवं कृषि संगठन 1996)। इसके अतिरिक्त घोषणा में यह भी स्वीकार किया गया कि ''खाद्य तक पहुँच बढ़ाने में निर्धनता का उन्मुलन किया जाना परमावश्यक है''।

किसी आपदा के समय खाद्य सुरक्षा कैसे प्रभावित होती हैं -- किसी प्राकृतिक आपदा जैसे, सूखे के कारण खाद्यान्न की कुल उपज में गिरावट आती हैं। इससे प्रभावित क्षेत्र में खाद्य की कमी हो जाती हैं। खाद्य की कमी के कारण कीमतें बढ़ जाती हैं। कुछ लोग ऊँची कीमतों पर खाद्य पदार्थ नहीं खरीद सकते। अगर यह आपदा अधिक विस्तृत क्षेत्र में आती है या अधिक लंबे समय तक बनी रहती हैं, तो भुखमरी की स्थिति पैदा हो सकती हैं। व्यापक भुखमरी से अकाल की स्थिति बन सकती हैं।

NOTES

अकाल के दौरान बड़े पैमाने पर मौते होती हैं जो भुखमरी तथा विवश होकर दूषित जल या सड़े भोजन के प्रयोग से फैलने वाली महामारियों तथा भुखमरी से उत्पन्न कमजोरी से रोगों के प्रति शरीर की प्रतिरोधी क्षमता में गिरावट के कारण होती हैं ।

भारत में जो सबसे भयानक अकाल पड़ा था, वह 1943 का बंगाल का अकाल था। इस अकाल में भारत के बंगाल प्रांत में तीस लाख लोग मारे गए थे ।

भारत में बंगाल जैसा अकाल पुनः कभी नहीं पड़ा । लेकिन यह चिंता का विषय हैं कि आज भी उड़ीसा में कालाहांडी तथा काशीपुर जैसे स्थान हैं, जहाँ अकाल जैसी दशाएँ अनेक वर्षों से बनी हुई हैं, और ऐसी भी सूचना मिली हैं कि वहां भूख के कारण लोगों की मृत्यू हो रही है, अतः किसी भी देश में खाद्य सुरक्षा आवश्यक होती हैं ताकि सदैव खाद्य की उपलब्धता सुनिश्चित की जा सके ।

खाद्य - असुरक्षित कौन हैं ?

यद्यपि भारत में लोगों का एक बड़ा वर्ग खाद्य एवं पोषण की दृष्टि से असुरक्षित है, परन्तु इससे सर्वाधिक प्रभावित वर्गों में निम्नलिखित शामिल हैं : पारंपरिक दस्तकार, पारंपरिक सेवाएँ प्रदान करने वाले क़ामगार और निराश्रित तथा भिखारी. शहरी क्षेत्रों में खाद्य की दृष्टि से असुरक्षित वे परिवार हैं जिनके कामकाजी सदस्य प्रायः कम वेतन वाले व्यवसायों और अनियत श्रम-बाजार में काम करते हैं । ये कामगार अधिकतर मौसमी कार्यों में लगे हैं और उनको इतनी कम मजदूरी दी जाती हैं कि वे मात्र जीवित रह सकते हैं ।

खाद्य पदार्थ खरीदने में असमर्थता के साथ सामाजिक संरचना भी खाद्य की दृष्टि से असुरक्षा में भूमिका निभाती हैं । अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ी जातियों के कुछ वर्गों (इनमें से निचली जातियाँ) का या तो भूमि का आधार कमजोर होता हैं या फिर उनकी भूमि की उत्पादकता बहुत कम होती है, वे खाद्य की दृष्टि से शीघ्र असुरक्षित हो जाते हैं । वे लोग भी खाद्य की दृष्टि से सर्वाधिक असुरक्षित होते हैं, जो प्राकृतिक आपदाओं से प्रभावित है और जिन्हें काम की तलाश में दूसरे जगह जाना पड़ता हैं । यह गंभीर चिंता का विषय हैं क्योंकि असुरक्षा से ग्रस्त आबादी का बड़ा भाग गर्भवती तथा दूध पिला रही महिलाओं तथा पाँच वर्ष से कम उम्र के बच्चों का है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं पारिवारिक सर्वेक्षण (एन.एच.एफ.एस.) 1998-99 के अनुसार भारत में ऐसी महिलाओं और बच्चों की संख्या 11 करोड़ के लगभग हैं । देश के कुछ क्षेत्रों, जैसे, आर्थिक रूप से पिछड़े राज्य जहाँ

गरीबी अधिक है, आदिवासी और सुदूर - क्षेत्र, प्राकृतिक आपदाओं से बार-बार प्रभावित होने वाले क्षेत्र आदि में खाद्य की दृष्टि से असुरक्षित लोगों की संख्या आनुपातिक रूप से बहुत अधिक हैं । वास्तव में, उत्तर प्रदेश (पूर्वी और दक्षिण - पूर्वी हिस्से), बिहार, झारखंड, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र के कुछ भागों में खाद्य की दृष्टि से असुरक्षित लोगों की सर्वाधिक संख्या हैं ।

भुखमरी खाद्य की दृष्टि से असुरक्षा को इंगित करने वाला एक दूसरा पहलू हैं । भुखमरी गरीबी की एक अभिव्यक्ति मात्र नहीं है, यह गरीबी लाती हैं । इस तरह खाद्य की दृष्टि से सुरक्षित होने से वर्तमान में भुखमरी समाप्त हो जाती हैं और भविष्य में भुखमरी का खतरा कम हो जाता हैं । भुखमरी के दीर्घकालिक और मौसमी आयाम होते हैं । दीर्घकालिक भुखमरी मात्रा एवं गुणवत्ता के आधार पर अपर्याप्त आहार ग्रहण करने के कारण होती हैं । गरीब लोग अपनी अत्यंत निम्न आय और जीवित रहने के लिए खाद्य पदार्थ खरीदने में अक्षमता के कारण दीर्घकालिक भुखमरी से ग्रस्त होते हैं । मौसमी भुखमरी फसल उपजाने और काटने के चक्र से संबद्ध हैं। यह ग्रामीण क्षेत्रों की कृषि क्रियाओं की मौसमी प्रकृति के कारण तथा नगरीय क्षेत्रों में अनियमित श्रम के कारण होती हैं । जैसे बरसात के मौसम के अनियत निर्माण श्रमिक को कम काम रहता हैं। इस तरह की भुखमरी तब होती है, जब कोई व्यक्ति पूरे वर्ष काम पाने में अक्षम रहता हैं।

KOTHARI GROUP OF INSTITUTIONS

NOTES

स्वतंत्रता के बाद खाद्यान्नो में अत्मनिर्भर होना भारत का लक्ष्य रहा हैं ।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय नीति-निर्माताओं ने खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के सभी उपाय किए । भारत ने कृषि में एक नयी रणनीति अपनाई, जिसकी परिणति हरित क्रांति में हुई, विशेषकर गेहूँ और चावल के उत्पादन में ।

तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने जुलाई, 1968 में 'गेहूँ क्रांति' शीर्षक से एक विशेष डाक टिकिट जारी कर कृषि के क्षेत्रक में हरित क्रांति की प्रभावशाली प्रगति को अधिकारिक रूप से दर्ज किया। गेहूँ की सफलता के बाद चावल के क्षेत्र में इस सफलता की पुनरावृत्ति हुई । बहरहाल, अनाज की उपज में वृद्धि समानुपातिक नहीं थी । उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में सर्वाधिक वृद्धि हुई जो कि 44.01 और 30.21 करोड़ टन क्रमश : 2015-16 में हैं। वर्ष 2015-16 में कुल अनाजों का उत्पादन 252.22 करोड़ टन हैं । गेहूँके उत्पादन में उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश में उल्लेखनीय वृद्धि हुई जो कि 26.87 और 17.69 करोड़ टन क्रमशः 2015-16 में हैं । दूसरी तरफ, पश्चिम बंगाल एवं उत्तर प्रदेश में चावल के उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि जो कि 15.75 एवं 12.51 करोड़ टन क्रमश : 2015-16 में हैं ।

भारत में खाद्य सुरक्षा

70 के दशक के प्रारंभ में हरित क्रांति के आने के बाद से मौसम की विपरीत दशाओं के दौरान भी देश में अकाल नहीं पड़ा हैं ।

देश भर में उपजाई जाने वाली विविध फसलों के कारण भारत पिछले तीस वर्षों के दौरान खाद्यान्नों के मामले में आत्मनिर्भर बन गया हैं । सरकार द्वारा सावधानीपूर्वक तैयार की गई खाद्य सुरक्षा व्यवस्था के कारण देश में (खराब मौसम स्थितियों के बावजूद अथवा किसी अन्य कारण से) अनाज की उपलब्धता और भी सुनिश्चित हो गई । इस व्यवस्था के दो घटक हैः (क) बफर स्टॉक और (ख) सार्वजनिक वितरण प्रणाली ।

आरेख 4.1 : भारत में अनाज की उपज (करोड़ टन)

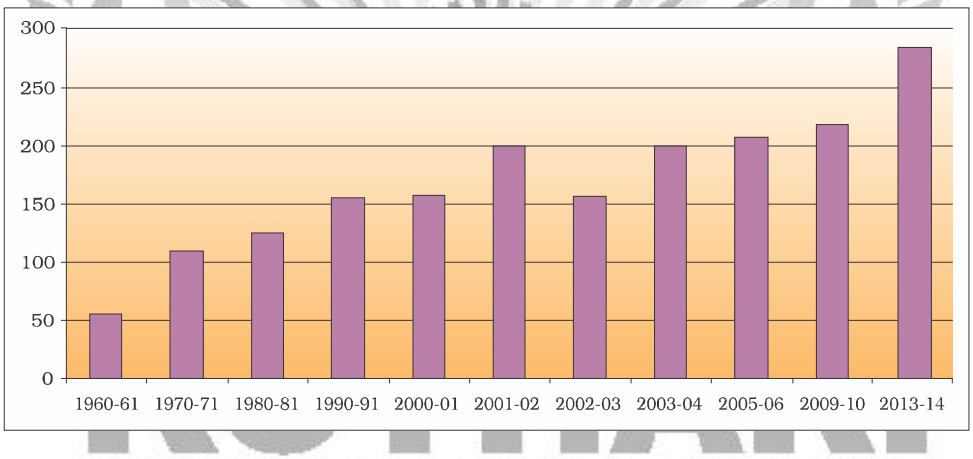

बफ़र स्टॉक क्या है?

बफ़र स्टॉक भारतीय खाद्य निगम (एफ़.सी.आई.) के माध्यम से सरकार द्वारा अधिप्राप्त अनाज, गेहूँ और चावल का भंडार है। भारतीय खाद्य निगम अधिशेष उत्पादन वाले राज्यों में किसानों से गेहूँ और चावल खरीदता है। किसानों को उनकी फसल के लिए पहले से घोषित कीमतें दी जाती हैं। इस मूल्य को न्यूनतम समर्थित कीमत कहा जाता है। इन फसलों के उत्पादन को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से बुआई के मौसम से पहले सरकार न्यूनतम समर्थित कीमत की घोषणा करती है। खरीदे हुए अनाज खाद्य भंडारों में रखे जाते हैं। क्या आप जानते हैं कि सरकार बफ़र स्टॉक क्यों बनाती है? ऐसा कमी वाले क्षेत्रों में और

NOTES

समाज के गरीब वर्गों में बाजार कीमत से कम कीमत पर अनाज के वितरण के लिए किया जाता है। इस कीमत को निर्गम कीमत भी कहते हैं। यह खराब मौसम में या फिर आपदा काल में अनाज की कमी की समस्या हल करने में भी मदद करता है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली क्या है?

भारतीय खाद्य निगम द्वारा अधिप्राप्त अनाज को सरकार विनियमित राशन दुकानों के माध्यम से समाज के गरीब वर्गों में वितरित करती है। इसे सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पी.डी.एस.) कहते हैं। अब अधिकांश क्षेत्रों, कस्बों और शहरों में राशन की दुकानें हैं। देश भर में लगभग 5.5 लाख राशन की दुकानें हैं। राशन की दुकानों में, जिन्हें उचित दर वाली दुकानें कहा जाता है, चीनी, खाद्यान्न और खाना पकाने के लिए मिट्टी के तेल का भंडार होता है। ये सब बाज़ार कीमत से कम कीमत पर लोगों को बेचा जाता है। राशन कार्ड रखने वाला कोई भी परिवार प्रतिमाह इनकी एक अनुबंधित मात्रा (जैसे 35 किलोग्राम अनाज, 5 लीटर मिट्टी का तेल, 5 किलोग्राम चीनी आदि निकटवर्ती राशन की दुकान से खरीद सकता है।

राशन कार्ड तीन प्रकार के होते है : (क) निर्धनों में भी निर्धन लोगों के लिए अंत्योदय कार्ड, (ख) निर्धनता रेखा से नीचे के लोगों के लिए बी पी एल कार्ड और (ग) अन्य लोगों के लिए ए पी एल कार्ड।

भारत में राशन व्यवस्था की शुरूआत बंगाल के अकाल की पृष्ठभूमि में 1940 के दशक में हुई। हरित क्रांति से पूर्व भारी खाद्य संकट के कारण 60 के दशक के दौरान राशन प्रणाली पुनर्जीवित की गई। गरीबी के उच्च स्तरों को ध्यान में रखते हुए 70 के दशक के मध्य एन.एस.एस.ओ. की रिपोर्ट के अनुसार खाद्य संबंधी तीन महत्वपूर्ण अंतः क्षेप कार्यक्रम प्रारंभ किए गएः सार्वजनिक वितरण प्रणाली (जो पहले से ही थी, लेकिन उसे और मज़बूत किया गया), एकीकृत बाल विकास सेवाएँ (आई.सी.डी.एस.), जो प्रायोगिक आधार पर 1975 में शुरू की गई) और काम के बदले अनाज (एफ.एफ.डब्ल्यू., 1977-78 में प्रारंभ)। इन वर्षों में कई नए कार्यक्रम शुरू किए गए हैं और कार्यक्रमों को चलाने के बढ़ते अनुभवों के आधार पर अन्य कार्यक्रमों का पुनर्गठन किया गया। वर्तमान में अनेक गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम (पी.ए.पी.) चल रहे हैं जो अधिकतर ग्रामीण क्षेत्रों में हैं। इनमें स्पष्ट रूप से घटक खाद्य भी है, जहाँ सार्वजनिक वितरण प्रणाली, दोपहर का भोजन आदि विशेष रूप से खाद्य की दृष्टि से सुरक्षा के कार्यक्रम हैं। अधिकतर पी.ए.पी. भी खाद्य सुरक्षा बढ़ाते हैं, रोज़गार कार्यक्रम गरीबों की आय में बढ़ोतरी कर खाद्य सुरक्षा में बड़ा योगदान करते हैं।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली की वर्तमान स्थिति

सार्वजनिक वितरण प्रणाली खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने की दिशा में भारत सरकार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कदम है। प्रारंभ में यह प्रणाली सबके लिए थी और निर्धनों और गैर-निर्धनों के बीच कोई भेद नहीं किया जाता था। बाद के वर्षों में सार्वजनिक वितरण प्रणाली को अधिक दक्ष और अधिक लक्षित बनाने के लिए संशोधित किया गया। 1992 में देश के 1700 ब्लॉकों में संशोधित सार्वजनिक वितरण प्रणाली (आर पी डी एस) शुरू की गई। इसका लक्ष्य दूर-दराज़ और पिछड़े क्षेत्रों में सार्वजनिक वितरण प्रणाली से लाभ पहुँचाना था। जून 1997 से 'सभी क्षेत्रों में गरीबों' को लक्षित करने के सिद्धांत को अपनाने के लिए लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली (टी.पी.डी.एस.) प्रारंभ की गई। यह पहला मौका था जब निर्धनों और गैर-निर्धनों के लिए विभेदक कीमत नीति अपनाई गई। इसके अलावा,वर्ष 2000 में दो विशेष योजनाएँ-अंत्योदय अन्न योजना और अन्नपूर्णा योजना प्रारंभ की गईं। ये योजनाएँ क्रमशः 'गरीबों में भी सर्वाधिक गरीब' और 'दीन वरिष्ठ नागरिक' समूहों पर लक्षित हैं। इन दोनों योजनाओं का संचालन सार्वजनिक वितरण प्रणाली

NOTES

के वर्तमान नेटवर्क से जोड़ दिया गया है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताओं का सारांश पी.डी.एस सारणी में दिया गया है।

सारणी : सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS) की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएँ

योजना का काम	आरंभ का वर्ष	लक्षित समूह	अद्यतन मात्रा	निर्गम कीमत (रु. प्र.कि.)
सार्वजनिक वितरण प्रणाली	1992 तक	सर्वजनीन	-	गेहूँ - 2.34 चावल - 2.89
संशोधित सार्वजनिक वितरण प्रणाली	1992	पिछड़े ब्लॉक	20 कि. खाद्यान्न	गेहूँ - 2.80 चावल - 3.77
लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली	1997	निर्धन और गैर-निर्धन बी.पी.एल. ए.पी.एल.	35 कि. खाद्यान्न	बी पी एल - गेहूँ - 4.15 चावल - 5.65 ए पी एल - गेहूँ - 6.10 चावल - 8.30
अंत्योदय अन्न योजना	2002	निर्धनों में सबसे निर्धन	35 कि. खाद्यान्न	गेहूँ - 2.00 चावल - 3.00
अन्नपूर्णा योजना	2000	दीन वरिष्ठ नागरिक	10 कि. खाद्यान्न	निःशुल्क
राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम	2013	योग्य परिवार	5 कि. प्रति व्यक्ति प्रति माह	गेहूं- 2.00 चावल -3.00 अनाज-1.00

नोट : बी पी एल : निर्धनता रेखा से नीचे, ए पी एल : निर्धनता रेखा से ऊपर।

भारतीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2013

भारतीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2013 के तहत खाद्य एवं पोषण संबंधी सुरक्षा सस्ती कीमतों पर उपलब्ध कराई जा सके ताकि मानव गरिमामय जीवन निर्वाह कर सके। इस अधिनियम के तहत 75 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या एवं 50 प्रतिशत शहरी जनसंख्या को योग्य परिवार में वर्गीकृत किया गया है।

विगत वर्षों के दौरान सार्वजनिक वितरण प्रणाली, मूल्यों को स्थिर बनाने और सामर्थ्य अनुसार कीमतों पर उपभोक्ताओं को खाद्यान्न उपलब्ध कराने की सरकार की नीति में सर्वाधिक प्रभावी साधन सिद्ध हुई है। इसने देश के अनाज की अधिशेष क्षेत्रों से कमी वाले क्षेत्रों में खाद्य पूर्ति के माध्यम से अकाल और भुखमरी की व्यापकता को रोकने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके अतिरिक्त, आमतौर पर निर्धन परिवारों के पक्ष में कीमतों का संशोधन होता रहा है। न्यूनतम समर्थित कीमत और अधिप्राप्ति ने खाद्यान्नों के उत्पादन की वृद्धि में योगदान दिया है तथा कुछ क्षेत्रों में किसानों को आय सुरक्षा प्रदान की है।

तथापि सार्वजनिक वितरण प्रणाली को अनेक आधारों पर कड़ी आलोचना का सामना करना पड़ा है। अनाजों से ठसाठस भरे अन्न भंडारों के बावजूद भुखमरी की घटनाएँ हो रही हैं। एफ.सी.आई. के भंडार अनाज से भरे हैं। कहीं अनाज सड़ रहा हैं तो कुछ स्थानों पर चूहे अनाज खा रहे हैं।

अंत्योदय अन्न योजना

अंत्योदय अन्न योजना दिसम्बर 2000 में शुरू की गई थी। इस योजना के अंतर्गत लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली में आने वाले, निर्धनता रेखा से नीचे के परिवारों में से एक करोड़ लोगों की पहचान की गई। संबंधित राज्य के ग्रामीण विकास विभागों ने गरीबी रेखा से नीचे के गरीब परिवारों को सर्वेक्षण के द्वारा चुना। 2 रुपये प्रति किलोग्राम गेहूँ और 3 रुपये प्रति किलोग्राम की अत्यधिक आर्थिक सहायता प्राप्त दर पर प्रत्येक पात्र परिवार को 25 किलोग्राम अनाज उपलब्ध कराया गया। अनाज की यह मात्रा अप्रैल 2002 में 25

NOTES

किलोग्राम से बढ़ा कर 35 किलोग्राम कर दी गई। जून 2003 और अगस्त 2004 में इसमें 50-50 लाख अतिरिक्त बी.पी.एल. परिवार दो बार जोड़े गए। इससे इस योजना में आने वाले परिवारों की संख्या 2 करोड़ हो गई।

सहायिकी (सब्सिडी) वह भुगतान है जो सरकार द्वारा किसी उत्पादक को बाज़ार कीमत की अनुपूर्ति के लिए किया जाता है। सहायिकी से घरेलू उत्पादकों के लिए ऊँची आय कायम रखते हुए, उपभोक्ता कीमतों को कम किया जा सकता है।

वर्ष 2014 में एफ.सी.आई. के पास गेहूँ और चावल का भंडार 65.2 करोड़ टन था जो न्यूनतम बफ़र प्रतिमान से बहुत अधिक था। फिर भी यह बफ़र स्टॉक प्रतिमानों से लगातार ऊँचा बना रहा। सरकार द्वारा शुरू की गई विभिन्न योजनाओं के अधीन खाद्यान्नों के वितरण के द्वारा स्थिति में सुधार हुआ। अनाज वितरण से हालात सुधरे। इस बात पर आम सहमति है कि बफ़र स्टॉक का उच्च स्तर बेहद अवांछनीय है और यह बर्बादी भी है। विशाल खाद्य स्टॉक का भंडारण, बर्बादी और अनाज की गुणवत्ता में कमी के अतिरिक्त उच्च रख-रखाव लागत के लिए भी ज़िम्मेदार है। न्यूनतम समर्थित कीमत को कुछ वर्ष के लिए स्थिर रखने पर गंभीरता से विचार करना चाहिए।

वर्धित न्यूनतम समर्थित कीमत पर अनाज की अधिक खरीदारी प्रमुख अनाज उत्पादक राज्यों जैसे पंजाब, हरियाणा और आंध्र प्रदेश की ओर से डाले गए दबावों का नतीजा है। इसके अलावा, चूँकि खरीदारी कुछ समृद्ध क्षेत्रों (पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश और कुछ सीमा तक पश्चिम बंगाल) में मुख्यतः दो फसलों-गेहूँ और चावल तक सीमित है, न्यूनतम समर्थित कीमत में वृद्धि ने विशेषतया खाद्यान्नों के अधिशेष वाले राज्यों के किसानों को अपनी भूमि पर मोटे अनाजों की खेती समाप्त कर धान और गेहूँ उपजाने के लिए प्रेरित किया है, जबकि मोटे अनाज गरीबों का प्रमुख भोजन है। धान की खेती के लिए सघन सिंचाई से पर्यावरण और जल स्तर में गिरावट भी आई है, जिससे इन राज्यों में कृषिगत विकास को बनाए रखने में खतरा पैदा हो गया है।

न्यूनतम समर्थित कीमतों के बढ़ने से सरकार की खाद्यान्नों की वसूली अनुरक्षण लागत बढ़ गई है। एफ.सी.आई. की बढ़ती परिवहन और भंडारण लागत ने इसे और बढ़ा दिया है।

एन.एस.एस.ओ. न. 558 की रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीण भारत में प्रति व्यक्ति चावल की खपत 6.38 किग्रा. वर्ष 2004-05 से घटकर 5.98 किग्रा. वर्ष 2011-12 में हो गया। नगरीय भारत में प्रति व्यक्ति प्रति माह चावल की खपत 4.71 किग्रा. से घटकर 4.49 किग्रा. 2011-12 में हो गया। प्रतिव्यक्ति पी.डी.एस. चावल की खपत 2004-05 से 2011-12 तक ग्रामीण भारत में दुगनी हुई और नगरीय भारत में 66 प्रतिशत बढ़ी हैं। पी.डी.एस. गेहूँ की प्रति माह प्रति व्यक्ति खपत 2004-05 से ग्रामीण एवं नगरीय भारत में दोगुना हो गई है।

पी.डी.एस. डीलर अधिक लाभ कमाने के लिए अनाज को खुले बाज़ार में बेचना, राशन दुकानों में घटिया अनाज बेचना, दुकान कभी-कभार खोलना जैसे अपचार करते हैं। राशन दुकानों में घटिया किस्म के अनाज का पड़ा रहना आम बात है, जो बिक नहीं पाता। यह एक बड़ी समस्या साबित हो रही है। जब राशन की दुकानें इन अनाजों को बेच नहीं पातीं, तो एफ.सी.आई. के गोदामों में अनाज का विशाल स्टॉक जमा हो जाता है। हाल के वर्षों में एक और कारण से सार्वजनिक वितरण प्रणाली में गिरावट आई है। पहले प्रत्येक परिवार के पास निर्धन या गैर-निर्धन राशन कार्ड था जिसमें चावल, गेहूँ, चीनी आदि वस्तुओं का एक निश्चित कोटा होता था। ये प्रत्येक परिवार को एक समान निम्न कीमत पर बेचे जाते थे। आज आप जो तीन प्रकार के कार्ड और कीमतों की शृंखला देखते हैं, पहले यह नहीं थी। बड़ी संख्या में परिवार राशन की दुकानों से अनाज खरीद सकते थे। हाँ, उनका कोटा निश्चित था। इनमें निम्न आय वर्ग के परिवार शामिल थे, जिनकी आय निर्धनता रेखा से नीचे के परिवार की आय से थोड़ी ही अधिक थी। अब तीन भिन्न कीमतों वाले टी.पी.डी.एस. की व्यवस्था में निर्धनता रेखा से ऊपर वाले किसी भी परिवार को राशन दुकान पर बहुत कम छूट मिलती है। ए.पी.एल. परिवारों के लिए कीमतें लगभग उतनी ही ऊँची हैं जितनी खुले बाज़ार में, इसलिए राशन की दुकान से इन चीज़ों की खरीदारी के लिए उनको बहुत कम प्रोत्साहन प्राप्त है।

NOTES

सहकारी समितियों की खाद्य सुरक्षा में भूमिका

भारत में विशेषकर देश के दक्षिणी और पश्चिमी भागों में सहकारी समितियाँ भी खाद्य सुरक्षा में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। सहकारी समितियाँ निर्धन लोगों को खाद्यान्न की बिक्री के लिए कम कीमत वाली दुकानें खोलती हैं। उदाहरणार्थ, तमिलनाडु में जितनी राशन की दुकानें हैं, उनमें से करीब 94 प्रतिशत सहकारी समितियों के माध्यम से चलाई जा रही हैं। दिल्ली में मदर डेयरी, उपभोक्ताओं को दिल्ली सरकार द्वारा निर्धारित नियंत्रित दरों पर दूध और सब्ज़ियाँ उपलब्ध कराने में तेजी से प्रगति कर रही हैं। गुजरात में दूध तथा दुग्ध उत्पादों में अमूल एक और सफल सहकारी समिति का उदाहरण है। इसने देश में श्वेत क्रांति ला दी हैं। देश के विभिन्न भागों में कार्यरत सहकारी समितियों के और अनेक उदाहरण हैं, जिन्होंने समाज के विभिन्न वर्गों के लिए खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित कराई है।

इसी तरह, महाराष्ट्र में एकेडमी आफ डेवलपमेंट साइंस (ए.डी.एस.) ने विभिन्न क्षेत्रों में अनाज बैंकों की स्थापना के लिए गैर-सरकारी संगठनों के नेटवर्क में सहायता की है। ए.डी.एस. गैर-सरकारी संगठनों के लिए खाद्य सुरक्षा के विषय में प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण कार्यक्रम संचालित करती है। अनाज बैंक अब धीरे-धीरे महाराष्ट्र के विभिन्न भागों में खुलते जा रहे हैं। अनाज बैंकों की स्थापना, गैर-सरकारी संगठनों के माध्यम से उन्हें फैलाने और खाद्य सुरक्षा पर सरकार की नीति को प्रभावित करने में ए.डी.एस. की कोशिश रंग ला रही है। ए.डी.एस. अनाज बैंक कार्यक्रम को एक सफल और नए प्रकार के खाद्य सुरक्षा कार्यक्रम के रूप में स्वीकृति मिली है।

निष्कर्ष

किसी देश की खाद्य सुरक्षा तब सुनिश्चित होती है, जब उसके सभी नागरिकों को पोषक भोजन उपलब्ध होता है। सभी व्यक्तियों के पास स्वीकार्य गुणवत्ता के खाद्य खरीदने की सामर्थ्य होती है और भोजन तक पहुँचने में कोई अवरोध नहीं होता। निर्धनता रेखा से नीचे रह रहे लोग खाद्य की दृष्टि से सदैव ही असुरक्षित रह सकते हैं, जबकि संपन्न लोग भी आपदाओं के समय खाद्य की दृष्टि से असुरक्षित हो सकते हैं। यद्यपि भारत में लोगों का एक बड़ा वर्ग खाद्य और पोषक तत्वों की असुरक्षा से ग्रस्त है, सबसे अधिक प्रभावित समूह ग्रामीण क्षेत्रों में भूमिहीन और गरीब परिवार, बहुत कम वेतन वाले कार्यों में लगे लोग और शहरी क्षेत्रों में मौसमी कार्यों में लगे अनियत श्रमिक हैं। देश के कुछ क्षेत्रों में खाद्य की दृष्टि से असुरक्षित लोगों की बड़ी संख्या तुलनात्मक रूप से बहुत अधिक है जैसे, आर्थिक रूप से पिछड़े राज्यों में जहाँ बहुत अधिक गरीबी है, जनजातियों वाले व दूरस्थ क्षेत्रों में और ऐसे क्षेत्रों में जहाँ प्राकृतिक आपदाएँ आती रहती हैं। समाज के सभी वर्गों के लिए खाद्य की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए भारत सरकार ने सावधानीपूर्वक खाद्य सुरक्षा प्रणाली तैयार की है, जिसके दो घटक हैंः (क) बफ़र स्टॉक और (ख) सार्वजनिक वितरण प्रणाली। सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अतिरिक्त कई निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रम भी शुरू किए गए, जिनमें खाद्य सुरक्षा का घटक भी शामिल था। इनमें से कुछ कार्यक्रम हैंः एकीकृत बाल विकास सेवाएँ, काम के बदले अनाज, दोपहर का भोजन, अंत्योदय अन्न योजना। खाद्य सुरक्षा उपलब्ध कराने में सरकार की भूमिका के अतिरिक्त अनेक सहकारी समितियाँ और गैर-सरकारी संगठन भी हैं, जो इस दिशा में तेज़ी से काम कर रहे हैं।

■■■

KOTHARI GROUP OF INSTITUTIONS

NOTES

इकाई-5 : आर्थिक विकास

देशों की तुलना करने के लिए उनकी आय सबसे महत्त्वपूर्ण विशिष्टता समझी जाती है। जिन देशों की आय अधिक है उन्हें कम आय वाले देशों से अधिक विकसित समझा जाता है। यह इस समझ पर आधारित है कि अधिक आय का अर्थ है मानवीय आवश्यकताओं की सभी वस्तुओं का अधिक होना। जो भी लोगों को पसंद है और जो उनके पास होना चाहिए, वे उन सभी वस्तुओं को अधिक आय के द्वारा प्राप्त कर पायेंगे। इसलिये, ज्यादा आय अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य समझा जाता है।

एक देश की आय क्या है? अन्तर्दृष्टि से, किसी देश की आय उस देश के सभी निवासियों की आय है। इससे हमें देश की कुल आय ज्ञात होती है।

लेकिन, देशों के बीच तुलना करने के लिए कुल आय इतना उपयुक्त माप नहीं है। क्योंकि देशों की जनसंख्या अलग-अलग होती है, कुल आय की तुलना करने से हमें यह ज्ञात नहीं होगा कि औसत व्यक्ति क्या कमा सकता है? क्या एक देश के लोग दूसरे देश के लोगों से बेहतर हैं? इसलिए, हम औसत आय की तुलना करते हैं जो कि देश की कुल आय को कुल जनसंख्या से भाग देकर निकाली जाती है। औसत आय को प्रतिव्यक्ति आय भी कहा जाता है।

विश्व बैंक की विश्व विकास रिपोर्ट के अनुसार, देशों का वर्गीकरण करने में इस मापदण्ड का प्रयोग किया गया है। वे देश जिनकी 2013 में प्रतिव्यक्ति आय US $ 12736 प्रति वर्ष या उससे अधिक है, उसे समृद्ध देश और वे देश जिनकी प्रतिव्यक्ति आय US $ 1045 प्रति वर्ष या उससे कम है, उन्हें निम्न आय वाला देश कहा गया है। भारत मध्य आय वर्ग के देशों में आता है क्योंकि उसकी प्रतिव्यक्ति आय 2013 में केवल US $ 1570 प्रति वर्ष थी। समृद्ध देशों, जिनमें मध्य पूर्व के देश और कुछ अन्य छोटे देश शामिल नहीं है, को आमतौर पर विकसित देश कहा जाता है।

सार्वजनिक सुविधाएँ

यह आवश्यक नहीं कि जेब में रखा रूपया वे सब वस्तुएँ और सेवाएँ खरीद सके, जिनकी आपको एक बेहतर जीवन के लिए आवश्यकता हो सकती है। नागरिक कितनी भौतिक वस्तुएँ प्रयोग कर सकते हैं, इसके लिए आय अपने आप में संपूर्ण रूप से पर्याप्त सूचक नहीं है। उदाहरण के लिए, सामान्यता आपका द्रव्य (आय) आपके लिए प्रदूषण मुक्त वातावरण नहीं खरीद सकता या बिना मिलावट की दवाएँ आपको नहीं दिला सकता, जब तक आप ऐसे समुदाय में ही जाकर नहीं रहने लग जाते जहाँ ये सुविधाएँ पहले से उपलब्ध हैं। द्रव्य (आय) आपको संक्रामक बीमारियों से भी नहीं बचा सकता, जब तक आपका पूरा समुदाय इनसे बचाव के लिए कदम नहीं उठाता।

वास्तव में जीवन में बहुत सी महत्त्वपूर्ण चीजों के लिए सबसे अच्छा और सस्ता तरीका इन वस्तुओं और सेवाओं को सामूहिक रूप से उपलब्ध कराना है।

KOTHARI GROUP OF INSTITUTIONS

मानव विकास रिपोर्ट

पिछले लगभग एक दशक में, स्वास्थ्य और शिक्षा सूचकों का आय के साथ व्यापक स्तर पर विकास के माप के लिए प्रयोग किया जाने लगा है। उदाहरण के लिए, यूएनडीपी द्वारा प्रकाशित मानव विकास रिपोर्ट, देशों की तुलना लोगों के शैक्षिक स्तर, उनकी स्वास्थ्य स्थिति और प्रति व्यक्ति आय के आधार पर करती है। भारत और उसके पड़ोसी देशों की 2015 की मानव विकास रिपोर्ट के कुछ आँकड़े मानव विकास तालिका में दर्शाए गए है।

NOTES

मानव विकास तालिका

वर्ष 2014 के लिए भारत और उसके पड़ोसी देशों के कुछ आँकड़े

देश	सकल राष्ट्रीय आय (स.रा.आ.) प्रति व्यक्ति अमेरिकी डॉलर में (2014 क्रय शक्ति क्षमता)	जन्म के समय संभावित आयु (2014)	साक्षरता दर 15+ वर्ष की जनसंख्या के लिए 2005-2013	विश्व में मानव विकास सूचकांक (HDI) का क्रमांक (2014)
श्रीलंका	9,779	74.9	91.2	73
भारत	5,497	68	62.8	130
म्यांमार	4,608	65.9	92.6	148
पाकिस्तान	4,866	66.2	54.7	147
नेपाल	2,311	69.6	57.4	145
बंगलादेश	3,191	71.6	58.8	142

स्रोतः मानव विकास रिपोर्ट, 2014

टिप्पणी

1. HDI का अर्थ है मानव विकास सूचकांक। ऊपर दी गई तालिका में HDI सूचकांक का क्रमांक कुल 188 देशों में से है।
2. जन्म के समय संभावित आयु, जैसा कि नाम से स्पष्ट है, व्यक्ति की जन्म के समय औसत आयु की संभावना दर्शाती है।
3. प्रतिव्यक्ति आय की गणना सभी देशों के लिए डॉलर में की जाती है, ताकि उसकी तुलना की जा सके। यह इस तरीके से भी की जाती है कि एक डॉलर किसी भी देश में समान मात्रा में वस्तुएँ और सेवाएँ खरीद सकें।

■■■

KOTHARI GROUP OF INSTITUTIONS

NOTES

इकाई-6 : भारतीय अर्थव्यवस्था के क्षेत्रक

आर्थिक कार्यों के क्षेत्रक

आप व्यक्तियों को विभिन्न आर्थिक गतिविधियों में कार्यरत पाएँगे। इनमें से कुछ गतिविधियाँ वस्तुओं का उत्पादन करती हैं। कुछ अन्य सेवाओं का सृजन करती हैं। ये गतिविधियाँ हमारे चारों ओर हर समय सम्पादित होती हैं, इन्हें समझने का एक तरीका यह है कि कुछ महत्त्वपूर्ण मानदंडों के आधार पर इन्हें विभिन्न समूहों में वर्गीकृत कर दिया जाए। इन समूहों को क्षेत्रक भी कहते हैं। उद्देश्य और किसी महत्वपूर्ण मानदंड के आधार पर इन्हें अनेक तरीकों से वर्गीकृत किया जा सकता है।

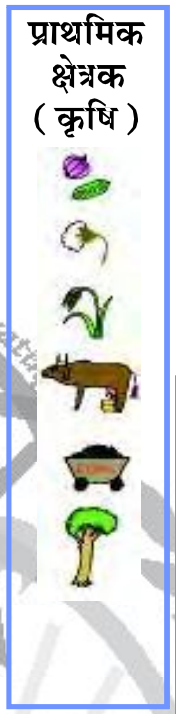

अर्थव्यवस्था का प्राथमिक क्षेत्र

प्राकृतिक संसाधनों के प्रत्यक्ष उपयोग पर आधारित अनेक गतिविधियाँ हैं। जैसे-कपास की खेती। यह एक मौसमी फसल है। कपास के पौधों की वृद्धि के लिए हम मुख्यतः प्राकृतिक कारकों जैसे- वर्षा, सूर्य का प्रकाश और जलवायु पर निर्भर हैं। अतः कपास एक प्राकृतिक उत्पाद है। इसी प्रकार, डेयरी उत्पादन में हम पशुओं की जैविक प्रक्रिया एवं चारा आदि की उपलब्धता पर निर्भर होते हैं। अतः इसका उत्पाद दूध भी एक प्राकृतिक उत्पाद है। इसी प्रकार, खनिज और अयस्क भी प्राकृतिक उत्पाद है। जब हम प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करके किसी वस्तु का उत्पादन करते हैं, तो इसे प्राथमिक क्षेत्रक की गतिविधि कहा जाता है, क्योंकि यह उन सभी उत्पादों का आधार है, जिन्हें हम क्रमशः निर्मित करते हैं चूँकि हम अधिकांश प्राकृतिक उत्पाद कृषि, डेयरी, मत्स्यन और वनों से प्राप्त करते हैं, इसलिए इस क्षेत्रक को कृषि एवं सहायक क्षेत्रक भी कहा जाता है।

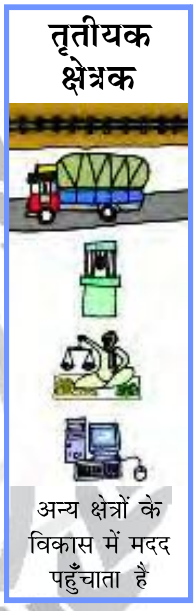

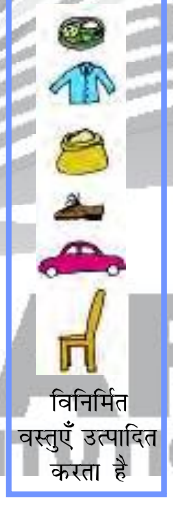

अर्थव्यवस्था का द्वितीयक क्षेत्र

द्वितीयक क्षेत्रक की गतिविधियों के अन्तर्गत प्राकृतिक उत्पादों को विनिर्माण प्रणाली के जरिए अन्य रूपों में परिवर्तित किया जाता है। यह प्राथमिक क्षेत्रक के बाद अगला कदम है। यहाँ वस्तुएँ सीधे प्रकृति से उत्पादित नहीं होती हैं, बल्कि निर्मित की जाती हैं। इसलिए विनिर्माण की प्रक्रिया अपरिहार्य है। यह प्रक्रिया किसी कारखाना, किसी कार्यशाला या घर में हो सकती है। जैसे, कपास के पौधे से प्राप्त रेशे का उपयोग कर हम सूत कातते और कपड़ा बुनते हैं। गन्ने को कच्चे माल के रूप में उपयोग कर हम चीनी और गुड़ तैयार करते हैं। हम मिट्टी से ईंट बनाते हैं और ईंटों से घर और भवनों का निर्माण करते हैं। चूँकि यह क्षेत्रक क्रमशः संवर्धित विभिन्न प्रकार के उद्योगों से जुड़ा हुआ है, इसलिए इसे औद्योगिक क्षेत्रक भी कहा जाता है।

NOTES

अर्थव्यवस्था का तृतीयक क्षेत्र

प्राथमिक और द्वितीयक क्षेत्रक के अतिरिक्त आर्थिक गतिविधियों की एक तीसरी कोटि भी है जो तृतीयक क्षेत्रक के अन्तर्गत आती हैं और उपर्युक्त दो क्षेत्रकों से भिन्न है। ये गतिविधियाँ प्राथमिक और द्वितीयक क्षेत्रक के विकास में मदद करती हैं। ये गतिविधियाँ स्वतः वस्तुओं का उत्पादन नहीं करती है, बल्कि उत्पादन-प्रक्रिया में सहयोग या मदद करती हैं। जैसे- प्राथमिक और द्वितीयक क्षेत्रक द्वारा उत्पादित वस्तुओं को थोक एवं खुदरा विक्रेताओं को बेचने के लिए ट्रकों और ट्रेनों द्वारा परिवहन करने की जरूरत पड़ती है। कभी-कभी वस्तुओं को गोदामों में भण्डारित करने की आवश्यकता होती है। हमें उत्पादन और व्यापार में सहूलियत के लिए टेलीफोन पर दूसरों से वार्तालाप करने या पत्राचार (संवाद) या बैंकों से कर्ज लेने की भी आवश्यकता होती है। परिवहन, भण्डारण, संचार, बैंक सेवाएँ और व्यापार तृतीयक गतिविधियों के कुछ उदाहरण हैं। चूँकि ये गतिविधियाँ वस्तुओं के बजाय सेवाओं का सृजन करती हैं, इसलिए तृतीयक क्षेत्रक को सेवा क्षेत्रक भी कहा जाता है।

सेवा क्षेत्रक में कुछ ऐसी अपरिहार्य सेवाएँ भी हैं, जो प्रत्यक्ष रूप से वस्तुओं के उत्पादन में सहायता नहीं करती हैं। जैसे, हमें शिक्षकों, डॉक्टरों, धोबी, नाई, मोची एवं वकील जैसे व्यक्तिगत सेवाएँ उपलब्ध कराने वाले और प्रशासनिक एवं लेखाकरण कार्य करने वाले लोगों की आवश्यकता होती है। वर्तमान समय में सूचना प्रौद्योगिकी पर आधारित कुछ नवीन सेवाएँ जैसे, इंटरनेट कैफे, ए.टी.एम. बूथ, कॉल सेंटर, सॉफ्टवेयर कम्पनी इत्यादि भी महत्वपूर्ण हो गई है।

तीन क्षेत्रकों की तुलना

प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्रक के विविध उत्पादन कार्यों से काफी अधिक मात्रा में वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन होता है। साथ ही, इन क्षेत्रकों में काफी अधिक संख्या में लोग वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन के लिए काम करते हैं। इसलिए, यह समझना आवश्यक है कि प्रत्येक क्षेत्रक में कितनी वस्तुएँ और सेवाएँ उत्पादित होती हैं और कितने लोग उस क्षेत्रक में काम करते हैं। किसी अर्थव्यवस्था में कुल उत्पादन और रोजगार की दृष्टि से एक या अधिक क्षेत्रक प्रधान होते हैं, जबकि अन्य क्षेत्रक अपेक्षाकृत छोटे आकार के होते हैं।

प्रत्येक क्षेत्रक की विविध वस्तुओं और सेवाओं की गणना करने की विधि-

अर्थशास्त्रियों का सुझाव है कि वस्तुओं और सेवाओं की वास्तविक संख्याओं का योग करने के स्थान पर उनके मूल्य का उपयोग किया जाना चाहिए। जैसे, यदि 10,000 कि.ग्रा. गेहूँ 8 रु. प्रति कि.ग्रा. की दर से बेचा जाता है तो, गेहूँ का मूल्य 80,000 रु. होगा। 10 रु. प्रति नारियल की दर से 5000 नारियल का मूल्य 50,000 रु. होगा। इसी प्रकार, तीनों क्षेत्रकों के वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य की गणना की जाती है और उसके बाद योगफल प्राप्त करते हैं।

उत्पादित और बेची गई प्रत्येक वस्तु (या सेवा) की गणना करने की जरूरत नहीं है। केवल अंतिम वस्तुओं और सेवाओं की गणना का ही औचित्य है। जैसे, एक किसान किसी आटा-मिल को 8 रु. प्रति कि.ग्रा. की दर से गेहूँ बेचता है। मिल में गेहूँ की पिसाई होती है और बिस्कुट कंपनी को आटा 10 रु. प्रति कि.ग्रा. की दर से बेचा जाता है। बिस्कुल कंपनी आटा के साथ चीनी एवं तेल जैसी चीजों का उपयोग करती है और बिस्कुट के चार पैकेट बनाती है। वह बाजार में उपभोक्ताओं को 60 रु. में (15 रु. प्रति पैकेट) बिस्कुट बेचती है। अतः बिस्कुट ही अंतिम उत्पाद है, अर्थात् वह वस्तु जो उपभोक्ताओं तक पहुँचती है।

KOTHARI GROUP OF INSTITUTIONS

NOTES

केवल 'अंतिम वस्तुओं और सेवाओं' की ही गणना क्यों की जाती है? दिए गए उदाहरण में अंतिम वस्तु के विपरीत गेहूँ और आटा जैसी वस्तुएँ मध्यवर्ती वस्तुएँ हैं। मध्यवर्ती वस्तुएँ, अंतिम वस्तुओं और सेवाओं के निर्माण में इस्तेमाल की जाती हैं। अंतिम वस्तुओं के मूल्य में मध्यवर्ती वस्तुओं का मूल्य पहले से ही शामिल होता है। बिस्कुट (अंतिम वस्तु) के मूल्य 60 रु. में पहले से ही आटा का मूल्य (10 रु.) शामिल है। इसी प्रकार अन्य सभी मध्यवर्ती वस्तुओं का मूल्य भी शामिल होगा। अतः गेहूँ और आटा के मूल्य की अलग-अलग गणना उचित नहीं है, क्योंकि तब हम एक ही वस्तु के मूल्य की गणना कई बार करते हैं। पहले गेहूँ के रूप में, फिर आटा के रूप में और अंततः वस्तु बिस्कुट के रूप में मूल्य की कई बार गणना करते हैं।

किसी विशेष वर्ष में प्रत्येक क्षेत्रक द्वारा उत्पादित अंतिम वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य, उस वर्ष में क्षेत्रक के कुल उत्पादन की जानकारी प्रदान करता है। तीनों क्षेत्रकों के उत्पादनों के योगफल को देश का सकल घरेलू उत्पाद (स.घ.उ.) (G.D.P.) कहते हैं। यह किसी देश के भीतर किसी विशेष वर्ष में उत्पादित सभी अंतिम वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य है। स.घ. उ. अर्थव्यवस्था की विशालता प्रदर्शित करता है।

भारत में सकल घरेलू उत्पाद मापन जैसा कठिन कार्य केन्द्र सरकार के मंत्रालय द्वारा किया जाता है। यह मंत्रालय राज्यों एवं केन्द्र शासित क्षेत्रों के विभिन्न सरकारी विभागों की सहायता से वस्तुओं और सेवाओं की कुल संख्या और उनके मूल्य से संबंधित सूचनाएँ एकत्र करता है और तब जी.डी.पी. का अनुमान करता है।

क्षेत्रकों में ऐतिहासिक परिवर्तन

सामान्यतया, अधिकांश विकसित देशों के इतिहास में यह देखा गया है कि विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में प्राथमिक क्षेत्रक ही आर्थिक सक्रियता का सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्रक रहा है।

जैसे-जैसे कृषि-प्रणाली परिवर्तित होती गई और कृषि क्षेत्रक समृद्ध होता गया, वैसे-वैसे पहले की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक उत्पादन होने लगा। अब अनेक लोग दूसरे कार्य करने लगे। शिल्पियों और व्यापारियों की संख्या में वृद्धि होने लगी। क्रय-विक्रय की गतिविधियाँ कई गुना बढ़ गई। इसके अतिरिक्त अनेक लोग परिवहन, प्रशासक और सैनिक कार्य इत्यादि से जुड़े थे। फिर भी, इस अवस्था में अधिकांश उत्पादित वस्तुएँ प्राकृतिक उत्पाद थी, जो प्राथमिक क्षेत्रक में आती थी और अधिकांश लोग इसी क्षेत्रक में रोजगार करते थे।

लम्बे समय (सौ वर्षों से अधिक) के बाद और विशेषकर विनिर्माण की नवीन प्रणाली के प्रचलन से कारखाने अस्तित्व में आए और उनका प्रसार होने लगा। जो लोग पहले खेतों में काम करते थे, उनमें से बहुत अधिक लोग अब कारखानों में काम करने लगे। कारखानों में सस्ती दरों पर उत्पादित वस्तुओं का लोग इस्तेमाल करने लगे। कुल उत्पादन एवं रोजगार की दृष्टि से द्वितीयक क्षेत्रक सबसे महत्वपूर्ण हो गया। इस कारण अतिरिक्त समय में भी काम होने लगा। इसका अर्थ है कि क्षेत्रकों का महत्त्व परिवर्तित हो गया।

विगत 100 वर्षों में, विकसित देशों में द्वितीयक क्षेत्रक से तृतीयक क्षेत्रक की ओर पुनः बदलाव हुआ है। कुल उत्पादन की दृष्टि से सेवा क्षेत्रक का महत्व बढ़ गया। अधिकांश श्रमजीवी लोग सेवा क्षेत्रक में ही नियोजित हैं। विकसित देशों में यही सामान्य लक्षण देखा गया है।

भारत में प्राथमिक, द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्रक

आलेख 1- तीनों क्षेत्रकों द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं को दिखाता है। यह दो वर्षों 1971-72 और 2011-12 के उत्पादन को दिखाता है। आप देख सकते हैं कि चालीस वर्षों में कुल उत्पादन में कितनी संवृद्धि हुई है।

NOTES

आलेख 1- प्राथमिक द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्रक द्वारा सकल घरेलू उत्पाद

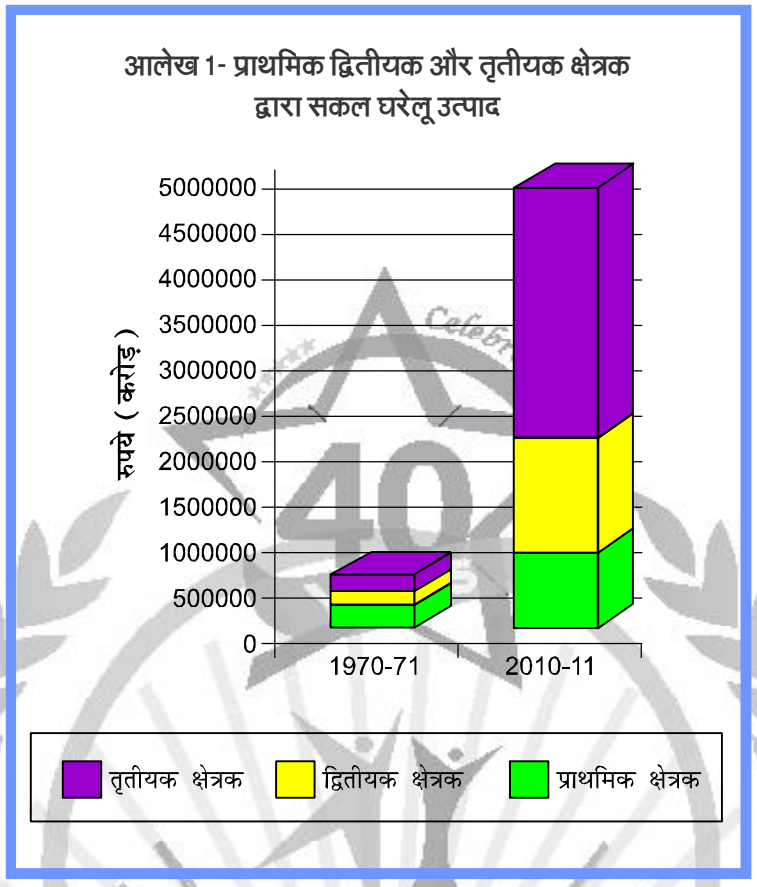

उत्पादन में तृतीयक क्षेत्रक का बढ़ता महत्व

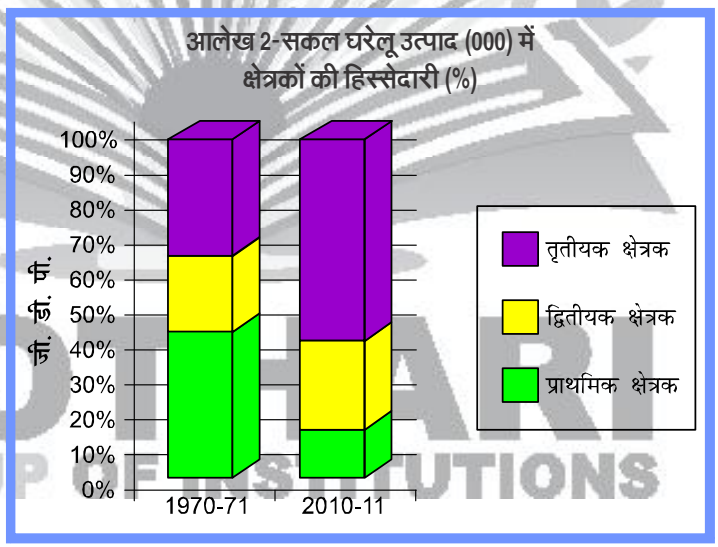

वर्ष 1971-72 और 2011-12 के बीच चालीस वर्षों में यद्यपि सभी क्षेत्रकों में उत्पादन में वृद्धि हुई, परन्तु सबसे अधिक वृद्धि तृतीयक क्षेत्रक के उत्पादन में हुई। परिणामतः वर्ष 2011-12 में भारत में प्राथमिक क्षेत्रक को प्रतिस्थापित करते हुए तृतीयक क्षेत्रक सबसे बड़े उत्पादक क्षेत्रक के रूप में उभरा।

भारत में तृतीयक क्षेत्रक इतना महत्वपूर्ण क्यों हो गया? इसके निम्न कारण हैं-

प्रथम, किसी भी देश में अनेक सेवाओं, जैसे- अस्पताल, शैक्षिक संस्थाएँ, डाक एवं तार सेवा, थाना, कचहरी, ग्रामीण प्रशासनिक कार्यालय, नगर निगम, रक्षा, परिवहन, बैंक, बीमा कंपनी इत्यादि की आवश्यकता होती है। इन्हें बुनियादी सेवाएँ माना जाता है। किसी विकासशील देश में इन सेवाओं के प्रबंधन की जिम्मेदारी सरकार उठाती है।

NOTES

द्वितीय, कृषि एवं उद्योग के विकास से परिवहन, व्यापार, भण्डारण जैसी सेवाओं का विकास होता है। प्राथमिक और द्वितीयक क्षेत्रक का विकास जितना अधिक होगा, ऐसी सेवाओं की माँग उतनी ही अधिक होगी।

तृतीय, जैसे-जैसे आय बढ़ती है, कुछ लोग अन्य कई सेवाओं जैसे- रेस्तरा, पर्यटन, शॉपिंग, निजी अस्पताल, निजी विद्यालय, व्यावसायिक प्रशिक्षण इत्यादि की माँग शुरू कर देते हैं। आप नगरों में, विशेषकर बड़ें नगरों में इस द्रुत परिवर्तन को देख सकते हैं।

चतुर्थ, विगत दशकों में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी पर आधारित कुछ नवीन सेवाएँ महत्वपूर्ण एवं अपरिहार्य हो गई हैं। इन सेवाओं के उत्पादन में तीव्र वृद्धि हो रही है।

सेवा क्षेत्रक की सभी सेवाओं में समान रूप से संवृद्धि नहीं हो रही है। भारत में सेवा क्षेत्रक कई तरह के लोगों को नियोजित करते हैं। एक ओर, उन सेवाओं की संख्या सीमित है, जिसमें अत्यन्त कुशल और शिक्षित श्रमिकों को रोजगार मिलता है। दूसरी ओर, बहुत अधिक संख्या में लोग छोटी दुकानों, मरम्मत कार्यों, परिवहन जैसी सेवाओं में लगे हुए हैं। वे लोग बड़ी मुश्किल से जीविका निर्वाह कर पाते हैं और वे इन सेवाओं में इसीलिए लगे हुए हैं क्योंकि उनके पास कोई अन्य वैकल्पिक अवसर नहीं है। इस कारण सेवा क्षेत्रक के केवल कुछ भागों का ही महत्व बढ़ रहा है।

भारत के संदर्भ एक उल्लेखनीय तथ्य है कि यद्दपि सकल घरेलू उत्पाद (स.घ.उ.) में तीनों क्षेत्रकों की हिस्सेदारी में परिवर्तन हुआ है, फिर भी रोजगार में ऐसा ही परिवर्तन नहीं हुआ है, आरेख 3-वर्ष 1972-73 एवं 2011-12 और वर्ष 2003 में तीनों क्षेत्रकों में रोजगार की हिस्सेदारी को दिखाता है। आज भी प्राथमिक क्षेत्र रोजगार में सबसे बड़ा नियोक्ता है।

आलेख 3 – रोजगार में क्षेत्रकों की हिस्सेदारी (%)

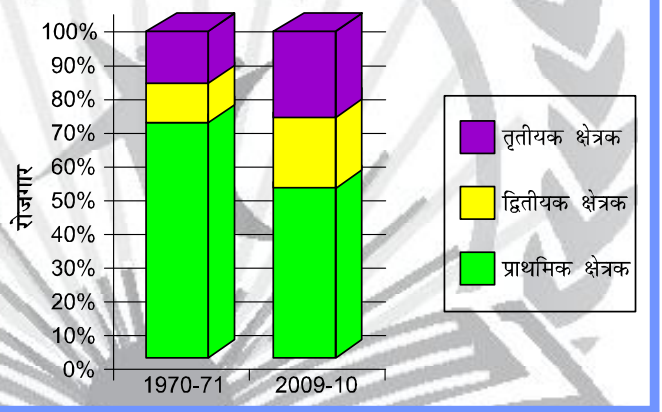

देश में आधे से अधिक श्रमिक प्राथमिक क्षेत्रक, मुख्यतः कृषि क्षेत्र, में काम कर रहे हैं जिसका सकल घरेलू उत्पाद में योगदान केवल एक - चौथाई है। इसकी तुलना में द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्रक का स.घ.उ. (GDP) में हिस्सा तीन-चौथाई है। परन्तु, ये क्षेत्र आधे से भी कम लोगों को रोजगार प्रदान करते हैं। इसका अर्थ है कि कृषि क्षेत्र में लगे श्रमिक अपनी क्षमता से कम उत्पादन कर रहे हैं?

इसका अर्थ यह है कि कृषि में आवश्यकता से अधिक लोग लगे हुए हैं? अतएव, यदि आप कुछ लोगों को कृषि क्षेत्र से हटा देते हो, तो भी उत्पादन प्रभावित नहीं होगा। दूसरे शब्दों में कृषि क्षेत्रक के श्रमिकों में अल्प बेरोजगारी है।

अल्प बेरजोगारी दूसरे क्षेत्रकों में भी हो सकती है। उदाहरण के लिए, शहरों में सेवा क्षेत्रक में हजारों अनियत श्रमिक हैं जो दैनिक रोजगार की तलाश करते हैं। वे प्लम्बर, पेन्टर, मरम्मत कार्य जैसे रोजगार करते हैं और अन्य लोग असुविधाजनक विषम काम करते हैं। उनमें से कई रोजाना काम नहीं पाते हैं। इसी प्रकार हम सेवा क्षेत्रक के कुछ लोगों को सड़कों पर ठेला खींचते अथवा कुछ चीजें बेचते हुए देखते हैं, **जहाँ वे पूरा दिन बिता देते हैं, परन्तु बहुत कम कमा पाते हैं।** वे यह काम इसलिए कर रहे हैं, क्यों उनके पास कोई बेहतर अवसर नहीं है।

KOTHARI GROUP OF INSTITUTIONS

NOTES

अतिरिक्त रोजगार का सृजन

कृषि क्षेत्र में अल्प बेरोजगारी की गंभीर स्थिति बनी हुई है। कुछ लोग ऐसे हैं जिन्हें बिल्कुल रोजगार नहीं मिला है। लोगों के लिए रोजगार की वृद्धि निम्न प्रकार से की जा सकती है-

कई खेतों की सिंचाई के लिए जब एक नये बाँध का निर्माण किया जाता है अथवा एक नहर खोदी जाती है तब इससे कृषि क्षेत्र में रोजगार के अनेक अवसर सृजित हो सकेंगे और अल्प बेरोजगारी की समस्या अपने-आप कम हो जाएगी।

किसान पहले की तुलना में जब अधिक उत्पादन करते हैं तो उन्हें कुछ उत्पादन बेचने की भी आवश्यकता होगी? इसके लिए उन्हें अपना उत्पादन नजदीक के शहर में ले जाने की आवश्यकता हो सकती है। यदि सरकार परिवहन और फसलों के भण्डारण पर अथवा बेहतर ग्रामीण सड़कों के निर्माण पर कुछ पैसा निवेश करती है तो छोटे ट्रक सब जगह पहुँच जाते हैं। इस तरीके से अनेक किसान फसलों की उपज और विक्रय कर सकते हैं। इस कार्य से केवल किसानों को ही उत्पादक रोजगार उपलब्ध नहीं हो सकता है, बल्कि परिवहन और व्यापार जैसी सेवाओं में लगे लोगों को भी रोजगार प्राप्त हो सकता है।

खेती करने के लिए किसानों को बीजों, उर्वरकों, कृषिगत उपकरणों और पानी निकालने के लिए पम्पसेटों की भी ज़रूरत होती है। एक निर्धन किसान होने के कारण वह सभी चीजों पर खर्च नहीं कर सकते इसलिए उन्हें साहूकारों से पैसा उधार लेना होगा और उच्च ब्याज दर पर वापस करना पड़ेगा। यदि स्थानीय बैंक उचित ब्याज दर पर उसे साख प्रदान करता है, तो वह इन सभी चीजों को उचित समय पर खरीदने और अपनी भूमि पर खेती करने में सक्षम होंगे तात्पर्य यह है कि पानी के साथ-साथ कृषि में सुधार के लिए किसानों को सस्ते कृषि साख भी प्रदान करने की ज़रूरत है।

अर्द्ध-ग्रामीण क्षेत्रों में उन उद्योगों और सेवाओं की पहचान करना और उन्हें बढ़ावा देना आवश्यक है जहाँ बहुत अधिक लोग नियोजित किए जा सकें। उदाहरण के लिए, मान लेते हैं कि अनेक किसान अरहर और मटर (दलहन फसलें) उपजाने का निर्णय करते हैं। इनकी वसूली और प्रसंस्करण के लिए तथा शहरों में विक्रय करने के लिए दाल मिल की स्थापना एक ऐसा ही उदाहरण है। शीत भण्डारण गृहों के खुलने से किसानों को एक अवसर मिलेगा कि वे अपने आलू और प्याज जैसे उत्पादों का भंडारण कर सके और अच्छी कीमत मिलने पर बेच सकें।

वन क्षेत्रों के निकटवर्ती गाँवों में हम शहद संग्रह केन्द्रों की शुरूआत कर सकते हैं, जहाँ किसान वनों से प्राप्त शहद बेच सकें। सब्जियों और कृषिगत उत्पादों, जैसे आलू, शकरकंद, चावल, गेहूँ, टमाटर और फल इत्यादि, जिसे बाहरी बाजारों में बेचा जा सके, के लिए प्रसंस्करण उद्योगों की स्थापना की जा सकती है। यह अर्द्ध-ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित उद्योगों में रोजगार प्रदान करेगा।

प्रत्येक राज्य या प्रदेश में वहाँ के निवासियों की आय और उनके रोजगार में वृद्धि करने की संभावना होती है। यह पर्यटन अथवा क्षेत्रीय शिल्प उद्योग अथवा सूचना प्रौद्योगिकी जैसी नवीन सेवाओं के माध्यम से हो सकता है। इनमें से कुछ के लिए समुचित योजना एवं सरकारी सहायता की आवश्यकता होगी। उदाहरण के लिए, योजना आयोग के अध्ययन के अनुसार यदि पर्यटन क्षेत्र में सुधार होता है तो हम प्रतिवर्ष 35 लाख से अधिक लोगों को अतिरिक्त रोज़गार प्रदान कर सकते हैं।

केन्द्र सरकार ने भारत के लगभग 625 जिलों में **काम का अधिकार** लागू करने के लिए एक कानून बनाया है। इसे **महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम 2005 (म.गाँ. रा.ग्रा.रो.ग्रा.अ.-2005)** कहते हैं। म.गाँ.रा. ग्रा.रो.गा.अ.-2005 के अन्तर्गत उन सभी लोगों को जो काम करने में सक्षम हैं और जिन्हें काम की ज़रूरत है, को सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में वर्ष में 100 दिन के रोज़गार की गारंटी दी गई है। यदि सरकार रोज़गार उपलब्ध कराने में असफल रहती है तो वह लोगों को बेरोज़गारी भत्ता देगी। अधिनियम के अन्तर्गत उस तरह के कामों को वरीयता दी जाएगी, जिनसे भविष्य में भूमि से उत्पादन बढ़ाने में मदद मिलेगी।

KOTHARI GROUP OF INSTITUTIONS

NOTES

संगठित और असंगठित के रूप में क्षेत्रकों का विभाजन

आर्थिक कार्यों को विभाजित करने का एक अन्य तरीका होता है इसे लोगों के नियोजित होने के आधार पर देखते हैं। उनके काम करने की शर्तें क्या हैं? क्या कोई नियम और विनियम है, जिनका उनके रोज़गार के संदर्भ में अनुपालन किया जाता है ?

संगठित क्षेत्रक में वे उद्यम अथवा कार्य-स्थान आते हैं जहाँ रोज़गार की अवधि नियमित होती है और इसलिए लोगों के पास सुनिश्चित काम होता है। वे क्षेत्रक सरकार द्वारा पंजीकृत होते हैं और उन्हें सरकारी नियमों एवं विनियमों का अनुपालन करना होता है । इन नियमों एवं विनियमों का अनेक विधियों, जैसे- कारखाना अधिनियम, न्यूनतम मज़दूरी अधिनियम, सेवानुदान अधिनियम, दुकान एवं प्रतिष्ठान अधिनियम, इत्यादि में उल्लेख किया गया है। इसे संगठित क्षेत्रक कहते है क्योंकि इसकी कुछ औपचारिक प्रक्रिया एवं कार्यविधि है। कुछ लोग किसी के द्वारा नियोजित नहीं होते बल्कि वे स्वतः काम कर सकते हैं। परन्तु वे भी अपने को सरकार के समक्ष पंजीकृत कराते हैं और नियमों एवं विनियमों का अनुपालन करते हैं।

संगठित क्षेत्रक के कर्मचारियों को रोज़गार-सुरक्षा के लाभ मिलते हैं। उनसे एक निश्चित समय तक ही काम करने की आशा की जाती है। यदि वे अधिक काम करते हैं तो नियोक्ता द्वारा उन्हें अतिरिक्त वेतन दिया जाता है। वे नियोक्ता से कई दूसरे लाभ भी प्राप्त करते हैं। जैसे- सवेतन छुट्टी, अवकाश काल में भुगतान, भविष्य निधि, सेवानुदान इत्यादि पाते हैं। वे चिकित्सीय लाभ पाने के हकदार होते हैं और नियमों के अनुसार कारखाना मालिक को पेयजल और सुरक्षित कार्य - पर्यावरण जैसी सुविधाओं को सुनिश्चित करना होता है। जब वे सेवानिवृत्त होते हैं, तो पेंशन भी प्राप्त करते हैं।

असंगठित क्षेत्रक-

छोटी-छोटी और बिखरी इकाइयों, जो अधिकांशतः सरकारी नियंत्रण से बाहर होती हैं, से निर्मित होता है इस क्षेत्रक के नियम और विनियम तो होते हैं परंतु उनका अनुपालन नहीं होता है। वे कम वेतन वाले रोजगार हैं और प्रायः नियमित नहीं हैं। यहाँ अतिरिक्त समय में काम करने, सवेतन छुट्टी, अवकाश, बीमारी के कारण छुटटी इत्यादि का कोई प्रावधान नहीं है। रोजगार सुरक्षित नहीं है। श्रमिकों को बिना किसी कारण काम से हटाया जा सकता है। कुछ मौसमों में जब काम कम होता है, तो कुछ लोगों को काम से छुट्टी दे दी जाती है। बहुत से लोग नियोक्ता की पसन्द पर निर्भर होते हैं।

इस क्षेत्रक में काफी संख्या में लोग अपने-अपने छोटे कार्यों, जैसे- सड़कों पर विक्रय अथवा मरम्मत कार्य में स्वतः नियोजित है। इसी प्रकार किसान अपने खेतों में काम करते हैं और ज़रूरत पड़ने पर मज़दूरी पर श्रमिकों को लगाते हैं।

असंगठित क्षेत्रक के श्रमिकों का संरक्षण कैसे हो?

संगठित क्षेत्रक अत्यधिक माँग पर ही रोज़गार प्रस्तावित करता है। लेकिन संगठित क्षेत्रक में रोज़गार के अवसरों में अत्यंत धीमी गति से वृद्धि हो रही है। यह भी आम तौर पर पाया जाता है कि संगठित क्षेत्रक, असंगठित क्षेत्रक के रूप में काम करते हैं। वे ऐसी रणनीति, कर वंचन एवं श्रमिकों को संरक्षण प्रदान करने वाली विधियों के अनुपालन से बचने के लिए अपनाते हैं। परिणामतः बहुत से श्रमिक असंगठित क्षेत्रक में काम करने के लिए विवश हुए हैं, जहाँ बहुत कम वेतन मिलता है। उनका प्रायः शोषण किया जाता है और उन्हें उचित मज़दूरी नहीं दी जाती है। उनकी आय कम है और नियमित नहीं है । इस रोज़गार में संरक्षण नहीं है और न ही इसमें कोई लाभ है।

सन् 1990 से यह भी देखा गया है कि संगठित क्षेत्रक के बहुत अधिक श्रमिक अपना रोज़गार खोते जा रहे हैं। ये लोग असंगठित क्षेत्रक में कम वेतन पर काम करने के लिए विवश हैं। अतः असंगठित क्षेत्रक में और अधिक रोज़गार की ज़रूरत के अलावा श्रमिकों को संरक्षण और सहायता की भी आवश्यकता है।

NOTES

ग्रामीण क्षेत्रों में, असंगठित क्षेत्रक मुख्यतः भूमिहीन कृषि श्रमिकों, छोटे और सीमांत किसानों, फसल बँटाईदारों और कारीगरों (जैसे बुनकरों, लुहारों, बढ़ई और सुनार) से रचित होता है। भारत में लगभग 80 प्रतिशत ग्रामीण परिवार छोटे और सीमांत किसानों की श्रेणी में आते हैं। इन किसानों को समय से बीज, कृषि-उपकरणों, साख, भण्डारण सुविधा और विपणन केन्द्र की पर्याप्त सुविधा उपलब्ध कराने की ज़रूरत है।

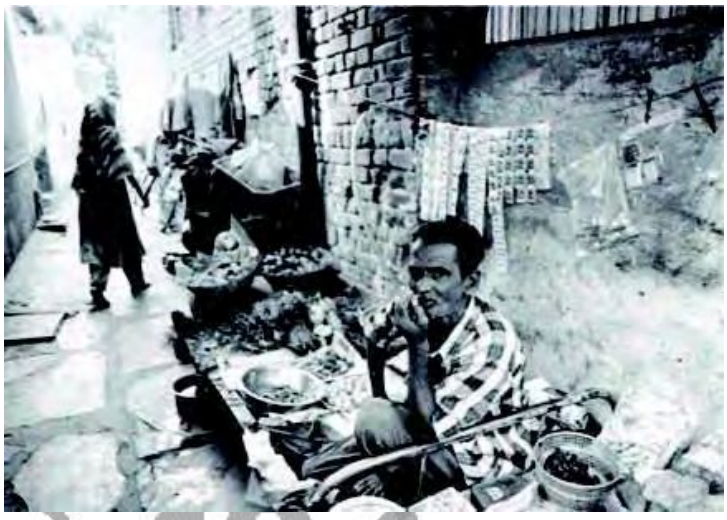

जब कारखाने बंद हो जाते हैं तब अनेक नियमित श्रमिक सब्जियाँ बेचते या ठेला खींचते या कुछ अन्य काम करते देखे जाते हैं।

शहरी क्षेत्रों में असंगठित क्षेत्रक मुख्यतः लघु उद्योगों के श्रमिकों, निर्माण, व्यापार एवं परिवहन में कार्यरत आकस्मिक श्रमिकों और सड़कों पर विक्रेता का काम करने वालों, सिर पर बोझा ढोने वाले श्रमिकों, वस्त्र-निर्माण करने वालों और कबाड़ उठाने वालों से रचित है। लघु उद्योगों को भी कच्चे माल की प्राप्ति और उत्पाद के विपणन के लिए सरकारी सहायता की आवश्यकता होती है। आकस्मिक श्रमिकों को शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में संरक्षण दिए जाने की ज़रूरत है।

स्वामित्व आधारित क्षेत्रक - सार्वजनिक और निजी क्षेत्रक

आर्थिक गतिविधियों को क्षेत्रकों में वर्गीकृत करने का एक अन्य तरीका हो सकता है- परिसंपत्तियों का स्वामी और सेवाओं की उपलब्धता के लिए ज़िम्मेदार व्यक्ति कौन है? **सार्वजनिक क्षेत्रक** में, अधिकांश परिसंपत्तियों पर सरकार का स्वामित्व होता है और सरकार ही सभी सेवाएँ उपलब्ध कराती है। **निजी क्षेत्रक** में परिसंपत्तियों पर स्वामित्व और सेवाओं के वितरण की जिम्मेदारी एकल व्यक्ति या कंपनी के हाथों में होती है। रेलवे अथवा डाकघर सार्वजनिक क्षेत्रक के उदाहरण हैं, जबकि टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी लिमिटेड (टिस्को) अथवा रिलायंस इण्डस्ट्रीज लिमिटेड जैसी कम्पनियाँ निजी स्वामित्व में हैं।

निजी क्षेत्रक की गतिविधियों का ध्येय लाभ अर्जित करना होता है। इनकी सेवाओं को प्राप्त करने के लिए हमें इन एकल स्वामियों और कंपनियों को भुगतान करना पड़ता है। सार्वजनिक क्षेत्रक का ध्येय केवल लाभ कमाना नहीं होता है। सरकार सेवाओं पर किए गए व्यय की भरपाई करों (टैक्स) या अन्य तरीकों से करती है।

कई ऐसी चीज़े हैं जिनकी आवश्यकता समाज के सभी सदस्यों को होती है, परन्तु **जिन्हें निजी क्षेत्रक उचित कीमत पर उपलब्ध नहीं कराते हैं।** क्योंकि इनमें से कुछ चीजों पर बहुत अधिक पैसे खर्च करने पड़ते हैं, जो निजी क्षेत्रकों की क्षमता से बाहर होती है। इन चीज़ों का इस्तेमाल करने वाले हज़ारों लोगों से पैसा एकत्र करना भी आसान नहीं है। फिर, यदि वे इन चीज़ों को उपलब्ध कराते हैं तो वे इसकी ऊंची कीमत वसूलते हैं। जैसे, सड़कों, पूलों, रेलवे, पत्तनों, बिजली आदि का निर्माण और बाँध आदि से सिंचाई की सुविधा उपलब्ध कराना। इसीलिए सरकार ऐसे भारी व्यय स्वयं उठाती है और सभी लोगों के लिए इन सुविधाओं को सुनिश्चित करती है।

NOTES

कुछ गतिविधियाँ ऐसी हैं, जिन्हें सरकारी समर्थन की ज़रूरत पड़ती है। निजी क्षेत्रक उन उत्पादनों अथवा व्यवसायों को तब तक जारी नहीं रख सकते, जब तक सरकार उन्हें प्रोत्साहित नहीं करती है। जैसे- उत्पादन-मूल्य पर बिजली की बिक्री से बहुत से उद्योगों में वस्तुओं की उत्पादन-लागत में वृद्धि हो सकती है। अनेक इकाइयाँ, विशेषकर लघु इकाईयाँ बन्द हो सकती हैं। यहाँ सरकार उस दर पर बिजली उत्पादन और वितरण के लिए कदम उठाती है जिस पर ये उद्योग बिजली खरीद सकते हैं। सरकार लागत का कुछ अंश वहन करती है।

भारत सरकार किसानों से उचित मूल्य पर गेहूँ और चावल खरीदती है। इसे अपने गोदामों में भण्डारित करती है और राशन-दुकानों के माध्यम से उपभोक्ताओं को कम मूल्य पर बेचती है। सरकार लागत का कुछ भाग वहन करती है। इस प्रकार, सरकार किसानों और उपभोक्ताओं दोनों को सहायता पहुँचाती है।

अधिकतर आर्थिक गतिविधियाँ ऐसी हैं, जिनकी प्राथमिक जिम्मेदारी सरकार पर है। **इन पर व्यय करना सरकार की अनिवार्यता है**। जैसे- सभी के लिए स्वास्थ्य और शिक्षा सुविधाएँ उपलब्ध कराना। समुचित ढंग से विद्यालय चलाना और गुणात्मक शिक्षा, विशेषकर प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराना सरकार का कर्तव्य है। भारत में निरक्षरों की संख्या विश्व में सबसे अधिक है।

इसी प्रकार, हम जानते हैं कि भारत के लगभग आधे बच्चे कुपोषण के शिकार हैं और उनमें से एक-चौथाई गंभीर रूप से बीमार हैं। ओडिशा अथवा मध्य प्रदेश का शिशु मृत्यु दर विश्व के कुछ निर्धनतम भागों से अधिक है। सरकार को भी मानव विकास के पक्षों, जैसे सुरक्षित पेयजल की उपलब्धता, निर्धनों के लिए आवासीय सुविधाएँ और भोजन एवं पोषण पर ध्यान देने की ज़रूरत है। सरकार का यह भी कर्तव्य है कि वह बजट बढ़ाकर अत्यन्त निर्धनों की और देश के पूर्णतया उपेक्षित भागों की देखभाल करे।

■■■

KOTHARI
GROUP OF INSTITUTIONS

NOTES

इकाई-7 : मुद्रा और साख

मुद्रा विनिमय का एक माध्यम

मुद्रा का इस्तेमाल हमारे रोज़ाना के जीवन का एक बहुत बड़ा हिस्सा है।

बहुत से लेन-देन में आप देखेंगे कि मुद्रा के ज़रिए वस्तुएँ खरीदी और बेची जा रही है। ऐसे कुछ लेन-देन में मुद्रा के बदले सेवाएँ प्रदान की जा रही हैं। लेकिन कुछ मामलों में हों सकता है कि लेन-देन होते वक्त मुद्रा का कोई आदान-प्रदान न हो, केवल बाद में भुगतान करने का वादा हो।

खरीददारी मुद्रा के जरिए क्यों होती है इसका कारण जानना बहुत सरल है। जिस व्यक्ति के पास मुद्रा है, वह इसका विनिमय किसी भी वस्तु या सेवा खरीदने के लिए आसानी से कर सकता है। इसलिए हर कोई मुद्रा के रूप में भुगतान लेना पसंद करता है, फिर उस मुद्रा का इस्तेमाल अपनी ज़रूरत की चीज़ें खरीदने के लिए करता है। एक चप्पल निर्माता का उदाहरण देखते हैं। वह बाज़ार में चप्पल बेचकर चावल खरीदना चाहता है। चप्पल बनाने वाला पहले चप्पल के बदले मुद्रा प्राप्त करेगा और फिर इस मुद्रा का इस्तेमाल चावल खरीदने के लिए करेगा।

चप्पल निर्माता यदि बिना मुद्रा का इस्तेमाल किए जूते का सीधे चावल से विनिमय करता तो उसे कितनी कठिनाई होती। उसे चावल उगाने वाले ऐसे किसान को खोजना पड़ता जो न केवल चावल बेचना चाहता हो, बल्कि साथ में चप्पल भी खरीदना चाहता हो। अर्थात् दोनों पक्ष एक दूसरे से चीज़ें खरीदने और बेचने पर सहमति रखते हों। **इसे आवश्यकताओं का दोहरा संयोग** कहा जाता है। एक व्यक्ति जो वस्तु बेचने की इच्छा रखता है, वही वस्तु दूसरा व्यक्ति ख़रीदने की भी इच्छा रखता हो। वस्तु विनिमय प्रणाली में, जहाँ मुद्रा का उपयोग किये बिना वस्तुओं का विनिमय होता है, वहाँ आवश्यकताओं का दोहरा संयोग होना अनिवार्य विशिष्टता है।

इसकी तुलना में ऐसी अर्थव्यवस्था जहाँ मुद्रा का प्रयोग होता है, मुद्रा आवश्यकता के दोहरे संयोग की ज़रूरत को खत्म कर देती है। फिर चप्पल निर्माता के लिए ज़रूरी नहीं रह जाता कि वो ऐसे किसान को ढूँढे जो न केवल उसके जूते ख़रीदे बल्कि साथ-साथ उसको चावल भी बेचे। उसे केवल अपने चप्पलों के लिए खरीददार ढूँढ़ना है। एक बार उसने चप्पलें, मुद्रा में बदल लिए तो वह बाज़ार में चावल या अन्य वस्तु खरीद सकता है। चूँकि मुद्रा विनिमय प्रक्रिया में मध्यस्थता का काम करती है, अतः इसे **विनिमय का माध्यम** कहा जाता है।

मुद्रा के आधुनिक रूप

हमने देखा है कि मुद्रा ऐसी चीज़ है जो लेन-देन में विनिमय का माध्यम बन सकती है। सिक्कों के चलन से पहले तरह-तरह की चीज़ें मुद्रा के रूप में इस्तेमाल की जाती थीं। उदाहरण के लिए, बहुत प्रारंभिक काल से ही भारतीय अनाज और पशु का मुद्रा के रूप में इस्तेमाल करते थे। इसके बाद सोना, चाँदी और ताँबे जैसी धातुओं के सिक्कों का चलन हुआ, जिसका चलन पिछली सदी तक रहा।

करेंसी

मुद्रा के आधुनिक रूपों में करेंसी - कागज के नोट और सिक्के शामिल हैं। वे चीजें जो पहले मुद्रा के रूप में प्रयोग की जाती थीं, उसके विपरीत आधुनिक मुद्रा बहुमूल्य धातुओं जैसे सोना-चाँदी और ताँबे के बने सिक्कों से नहीं बनी है। अनाज और पशुओं की तरह वे रोजमर्रा की चीजें भी नहीं हैं। आधुनिक मुद्रा का इस प्रकार का अपना कोई इस्तेमाल नहीं है।

फिर इसे विनिमय का माध्यम क्यों स्वीकार किया जाता है? इसे विनिमय का माध्यम इसलिए स्वीकार किया जाता है, क्योंकि किसी देश की सरकार इसे प्राधिकृत करती है।

KOTHARI GROUP OF INSTITUTIONS

NOTES

भारत में भारतीय रिज़र्व बैंक केन्द्रीय सरकार की तरफ से करेंसी नोट जारी करता है। भारतीय कानून के अनुसार, किसी व्यक्ति या संस्था को मुद्रा जारी करने की अनुमति नहीं है। इसके अलावा कानून विनिमय के माध्यम के रूप में रूपये का इस्तेमाल करने की वैधता प्रदान करता है, जिसे भारत में, सौदों में अदायगी के लिए मना नहीं किया जा सकता । भारत में कोई व्यक्ति कानूनी तौर पर रूपयों में अदायगी को अस्वीकार नहीं कर सकता। इसलिए, रूपया व्यापक स्तर पर विनिमय का माध्यम स्वीकार किया गया है।

बैंकों में निक्षेप

लोग मुद्रा, बैंकों में निक्षेप के रूप में भी रखते हैं। किसी समय पर, लोगों को रोज़मर्रा की आवश्यकताओं के लिए कुछ ही करेंसी की ज़रूरत होती है। उदाहरण के लिए, हर महीने के आखिर में वेतन वाले मज़दूरों के पास अतिरिक्त नकद होता है। लोग इस अतिरिक्त नकद का क्या करते हैं? वे इसे बैंकों में अपने नाम से खाता खोलकर जमा कर देते हैं। बैंक ये जमा स्वीकार करते हैं और इस पर ब्याज भी देते हैं। इस तरह लोगों का धन बैंकों के पास सुरक्षित रहता है और इस पर सूद भी मिलता है लोगों को अपनी आवश्यकता के अनुसार इसमें से धन निकालने की सुविधा भी उपलब्ध होती है। चूँकि बैंक खातों में जमा धन को माँग के ज़रिए निकाला जा सकता है, इसलिए इस जमा को माँग जमा कहा जाता है।

माँग जमा एक अन्य दिलचस्प सुविधा देता है। यह सुविधा इसे मुद्रा का (विनिमय का माध्यम) महत्वपूर्ण लक्षण प्रदान करती है आपने नकद की बजाय चैक से भुगतान के बारे में सुना होगा। चैक से भुगतान के लिए भुगतानकर्ता, जिसका किसी बैंक में खाता है, एक निश्चित रकम के लिए चैक काटता है। चैक एक ऐसा कागज़ है, जो बैंक को किसी व्यक्ति के खाते से चैक पर लिखे नाम के किसी दूसरे व्यक्ति को एक ख़ास रकम का भुगतान करने का आदेश देता है।

माँग जमा में मुद्रा के अनिवार्य लक्षण मिलते हैं। माँग जमा के बदले चैक लिखने की सुविधा से बिना नकद का इस्तेमाल किये सीधा भुगतान करना संभव हो जाता है। चूँकि माँग जमाओं को करेंसी के साथ-साथ व्यापक स्तर पर भुगतान का माध्यम स्वीकार किया जाता है, इसलिए आधुनिक अर्थव्यवस्था में इसे भी मुद्रा समझा जाता है।

यहाँ हमें बैंक की भूमिका को याद रखना होगा। बैंकों के लिए इन जमा के बदले कोई भी माँग जमा एवं भुगतान नहीं होगा। मुद्रा के आधुनिक रूप-करेंसी और जमा-आधुनिक बैंक प्रणाली की कार्यप्रणाली से बहुत करीब से जुड़े हुए हैं।

बैंकों की ऋण संबंधी गतिविधियाँ

बैंक जमा रकम का एक छोटा हिस्सा अपने पास नकद के रूप में रखते हैं। उदाहरण के लिये, आजकल भारत में बैंक, जमा का केवल 15 प्रतिशत हिस्सा नकद के रूप में अपने पास रखते हैं। इसे किसी एक दिन में जमाकर्ताओं द्वारा धन निकालने की संभावना को देखते हुए यह प्रावधान किया जाता है। चूंकि किसी एक विशेष दिन में केवल कुछ जमाकर्ता ही नकद निकालने के लिये आते हैं, इसलिये बैंक का काम इतने नकद से आराम से चल जाता है। बैंक जमा राशि के एक बड़े भाग को ऋण देने के लिये इस्तेमाल करते हैं। विभिन्न आर्थिक गतिविधियों के लिये ऋण की बहुत मांग रहती है। बैंक जमा राशि का लोगों की ऋण आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये इस्तेमाल करते हैं। इस तरह, बैंक जिनके पास अतिरिक्त राशि है (जमाकर्ता) एवं जिन्हें राशि की जरूरत है (कर्जदार) के बीच मध्यस्थता का काम करते हैं। बैंक जमा पर जो ब्याज देते हैं उससे ज्यादा ब्याज ऋण पर लेते हैं। कर्जदारों से लिये गए ब्याज और जमाकर्ताओं को दिये गये ब्याज के बीच का अंतर बैंकों की आय का प्रमुख स्रोत है।

NOTES

साख की दो विभिन्न स्थितियाँ

हमारे रोजमर्रा की गतिविधियों में ऐसे बहुत से लेन-देन होते हैं, जहाँ किसी न किसी रूप में ऋण का प्रयोग होता है। ऋण (उधार) से हमारा तात्पर्य एक सहमति से है जहाँ साहूकार कर्जदार को धन, वस्तुएं या सेवाएं मुहैया कराता है और बदले में भविष्य में कर्जदार से भुगतान करने का वादा लेता है। उत्पादन के लिये कार्यशील पूंजी की जरूरत को ऋण के द्वारा व्यापारी पूरा करता है। ऋण उसे उत्पादन के कार्यशील खर्चों तथा उत्पादन को समय पर पूरा करने में मदद करता है और वह अपनी कमाई बढ़ा पाता है। इस प्रकार ऋण एक महत्वपूर्ण तथा सकारात्मक भूमिका अदा करता है। ग्रामीण क्षेत्रों में साख की मुख्य मांग फसल उगाने के लिये होती है। फसल उगाने में बीज, खाद, कीटनाशक दवाओं, पानी, बिजली, उपकरणों की मरम्मत इत्यादि पर काफी खर्च होता है। इन आगतों को खरीदने और फसल की बिक्री होने के बीच कम से कम 3-4 महीने का अंतराल होता है। आमतौर से किसान ऋतु के आरंभ में फसल उगाने के लिये उधार लेते हैं और फसल तैयार होने के बाद वापस कर देते हैं। उधार की अदायगी मुख्यतः फसल की कमाई पर निर्भर है।

ऋण की शर्तें

हर ऋण समझौते में ब्याज दर निश्चित कर दी जाती है, जिसे कर्जदार महाजन को मूल रकम के साथ अदा करता है। इसके अलावा उधारदाता कोई समर्थक ऋणाधार (गिरवी रखने के लिये) की मांग कर सकता है। समर्थक ऋणाधार ऐसी संपत्ति है, जिसका मालिक कर्जदार है (जैसे कि भूमि, इमारत, गाड़ी, पशु, बैंकों में पूंजी) और इसका इस्तेमाल वह उधारदाता को गारंटी देने के रूप में करता है, जब तक कि ऋण का भुगतान नहीं हो जाता। यदि कर्जदार उधार वापस नहीं कर पाता, तो उधारदाता को भुगतान प्राप्ति के लिये संपत्ति या समर्थक ऋणाधार बेचने का अधिकार होता है। संपत्ति- जैसे कि जमीन, बैंकों में जमा पूंजी, पशु इत्यादि समर्थक ऋणाधार के आम उदाहरण हैं, जिनका उपयोग कर्ज लेने के लिये किया जाता है। ब्याज दर, समर्थक ऋणाधार, आवश्यक कागज़ात और भुगतान के तरीकों को सम्मिलित रूप से ऋण की शर्तें कहा जाता है। ऋण की शर्तों में एक ऋण व्यवस्था से दूसरी ऋण व्यवस्था में काफी फर्क आ जाता है। कर्ज की शर्तें उधारदाता और कर्जदार की प्रकृति पर भी निर्भर करती है।

सहकारी समितियों से ऋण

बैंकों के अलावा ग्रामीण क्षेत्रों में सस्ते ऋण का एक अन्य स्रोत सहकारी समितियाँ हैं। सहकारी समिति के सदस्य अपने संसाधनों को कुछ क्षेत्रों में सहयोग के लिये एकत्र करते हैं। कई प्रकार की सहकारी समितियाँ संभव है, जैसे-किसानों, बुनकरों एवं औद्योगिक मजदूरों इत्यादि की सहकारी समितियाँ । कृषक सहकारी समिति जोनपुर के नजदीक एक गांव में काम करती हैं। इसके 2300 किसान सदस्य हैं। यह अपने सदस्यों से जमा प्राप्त करती हैं। इस जमा पूंजी को ऋणाधार मानते हुए, इस सहकारी समिति ने बैंक से बड़ा

KOTHARI GROUP OF INSTITUTIONS

NOTES

ऋण प्राप्त किया है। इस पूंजी का इस्तेमाल सदस्यों को कर्ज देने के लिये किया जाता है। यह ऋण लौटाने के बाद कर्ज का दूसरा दौर शुरू किया जा सकता है। कृषक सहकारी समिति कृषि उपकरण खरीदने, खेती तथा कृषि व्यापार करने, मछली पकड़ने, घर बनाने और अन्य विभिन्न प्रकार के खर्चों के लिये ऋण मुहैया कराती है।

भारत में औपचारिक क्षेत्रक में साख

लोग विभिन्न स्रोतों से ऋण प्राप्त करते हैं। विभिन्न प्रकार के ऋणों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है। औपचारिक तथा अनौपचारिक क्षेत्रक ऋण। पहले वर्ग में बैंकों और सहकारी समितियों के लिये कर्ज आते हैं। अनौपचारिक उधारदाता में साहूकार, व्यापारी, मालिक रिश्तेदार, दोस्त इत्यादि आते हैं। (साख आलेख) में आप भारत के ग्रामीण परिवारों के लिये ऋण के विभिन्न स्रोतों को देख सकते हैं।भारतीय रिज़र्व बैंक ऋणों के औपचारिक स्रोतों की कार्यप्रणाली पर नज़र रखता है। उदाहरण के लिये, हमने देखा कि बैंक अपनी जमा का एक न्यूनतम नकद हिस्सा अपने पास रखते हैं। आर.बी.आई नजर रखता है कि बैंक वास्तव में नकद शेष बनाए हुए हैं। आर.बी.आई इस पर भी नज़र रखता है कि बैंक केवल लाभ अर्जित करने वाले व्यवसायियों और व्यापारियों को ही ऋण मुहैया नहीं करा रहे, बल्कि छोटे किसानों, छोटे उद्योगों, छोटे कर्जदारों इत्यादि को भी ऋण दे रहे हैं। समय-समय पर बैंकों द्वारा आर.बी.आई को यह जानकारी देनी पड़ती है कि वे कितना और किनको ऋण दे रहे हैं और उसकी ब्याज की दर क्या है? अनौपचारिक क्षेत्रक में ऋणदाताओं की गतिविधियों की देखरेख करने वाली कोई संस्था नहीं है। वे ऐच्छिक दरों पर ऋण दे सकते हैं। उन्हें नाजायज़ तरीकों से अपने पैसे वापस लेने से रोकने वाला कोई नहीं है। औपचारिक ऋणदाताओं की तुलना में अनौपचारिक क्षेत्रक के ज्यादातर ऋणदाता कहीं अधिक ब्याज वसूल करते हैं। इसलिये, अनौपचारिक ऋण कर्जदाता को अधिक महंगा पड़ता है। ऋण की ऊंची लागत का अर्थ है कर्जदार की आय का अधिकतर हिस्सा ऋण की अदायगी में ही खर्च हो जाता है। इसलिये, कर्जदारों के पास अपने लिये कम आय बचती है। कुछ मामलों में ऋण की ऊँची ब्याज दरों के कारण कर्ज वापस करने की रकम कर्जदार की आय से भी अधिक हो जाती है। इसके कारण ऋण का बोझ बढ़ जाता है और व्यक्ति ऋण जाल में फंस जाता है। ऐसा भी संभव है कि जो लोग कर्ज लेकर अपना उद्यम शुरू करना चाहते है, वे ऋण की अधिक लागत को देख कर पीछे हट जाएं। इन सभी कारणो को देखते हुए बैंकों और सहकारी समितियों को ज्यादा कर्ज देना चाहिये। इसके जरिये लोगों की आय बढ़ सकती है और बहुत से लोग अपनी विभिन्न जरूरतों के लिये सस्ता कर्ज ले सकेंगे। वे फसल उगा सकते हैं, कोई कारोबार कर सकते हैं, छोटे उद्योग इत्यादि लगा सकते हैं। वे नया उद्योग लगा सकते हैं या वस्तुओं का व्यापार कर सकते हैं। सस्ता और सामर्थ्य के अनुकूल कर्ज देश के विकास के लिये अति आवश्यक है।

साख आलेख - वर्ष 2012 में भारत में 1000 ग्रामीण परिवारों के साख के स्रोत

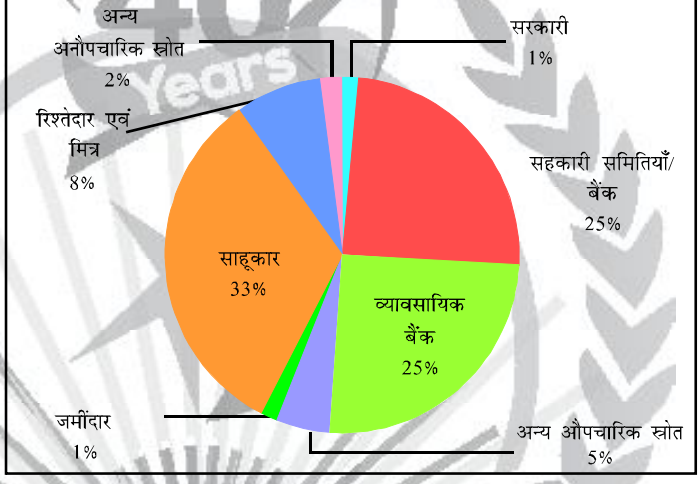

NOTES

औपचारिक और अनौपचारिक साख

शहरी क्षेत्रों के निर्धन परिवारों की कर्जों की 85 प्रतिशत जरूरतें अनौपचारिक स्रोतों से पूरी होती हैं। शहरी इलाकों के अमीर परिवारों के केवल 10 प्रतिशत कर्ज अनौपचारिक स्रोतों से जबकि 90 प्रतिशत औपचारिक स्रोतों से हैं इसी तरह की तस्वीर ग्रामीण क्षेत्रों में भी है। अमीर परिवार औपचारिक ऋणदाताओं से सस्ता ऋण ले रहे हैं, जबकि गरीब परिवारों को कर्ज के लिये बहुत सारा पैसा देना पड़ता है। औपचारिक स्रोत अभी भी ग्रामीण परिवारों की कुल ऋण जरूरतों का केवल 50 प्रतिशत पूरा कर पाता है। बाकी जरूरतें अनौपचारिक स्रोतों से पूरी होती है। अनौपचारिक ऋणदाताओं से लिये गए उधार पर आमतौर से ब्याज की दरें बहुत अधिक होती है और यह उधार कर्जदाताओं की आय को बढ़ाने का काम कम ही कर पाता है। इसलिये, बैंकों और सहकारी समितियों को अपनी गतिविधियाँ विशेषकर ग्रामीण इलाकों में बढ़ाने की जरूरत है, ताकि कर्जदारों की अनौपचारिक स्रोत पर से निर्भरता घटे। यदि एक तरफ औपचारिक स्रोत के ऋणों का विस्तार होना चाहिये तो दूसरी ओर यह भी जरूरी है कि यह ऋण सभी लोगों को प्राप्त हो सके। वर्तमान समय में अमीर परिवार ही औपचारिक स्रोतों से ऋण प्राप्त करते हैं। जबकि गरीब परिवारों को अनौपचारिक स्रोतों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। यह जरूरी है कि औपचारिक ऋण का अधिक समान वितरण हो, ताकि गरीब परिवार भी सस्ते ऋण का फायदा उठा सके।

निर्धनों के स्वयं सहायता समूह

निर्धन परिवार ऋण के लिये अब भी अनौपचारिक स्रोतों पर निर्भर हैं। ऐसा इसलिये है क्योंकि भारत के सभी ग्रामीण क्षेत्रों में बैंक मौजूद नहीं है। जहाँ कहीं मौजूद भी हैं वहाँ बैंक से कर्ज लेना अनौपचारिक स्रोत से कर्ज लेने की तुलना में ज्यादा मुश्किल है। बैंक से कर्ज लेने के लिये ऋणाधार और विशेष कागजातों की जरूरत पड़ती है। ऋणाधार की अनुपलब्धता एक प्रमुख कारण है, जिससे गरीब बैकों से ऋण नहीं ले पाते। दूसरी ओर, अनौपचारिक ऋणदाता जैसे साहूकार इन कर्जदारों को व्यक्तिगत स्तर पर जानते हैं और इस कारण अक्सर बिना ऋणाधार के भी ऋण देने के लिये तैयार हो जाते है। कर्जदार जरूरत पड़ने पर पुराना ऋण चुकाये बिना भी, नया कर्ज लने के लिये साहूकार के पास जा सकते हैं। लेकिन, महाजन ब्याज की दरें बहुत ऊंची रखते हैं, लेन-देन की लिखा पढ़ी भी पूरी नहीं करते और निर्धन कर्जदारों को तंग करते हैं। लोगों ने गरीबों को उधार देने के कुछ नए तरीके अपनाने की कोशिश की है। इन में से एक विचार ग्रामीण क्षेत्रों के गरीबों विशेषकर महिलाओं को छोटे छोटे स्वयं सहायता समूहों में संगठित करने और उनकी बचत पूंजी को एकत्रित करने पर आधारित है। एक विशेष स्वयं सहायता समूह में एक दूसरे के पड़ोसी 15-20 सदस्य होते हैं, जो नियमित रूप से मिलते हैं और बचत करते हैं। प्रति व्यक्ति बचत 25 रूपये से लेकर 100 रूपये या अधिक हो सकती है। यह परिवारों की बचत करने की क्षमता पर निर्भर करता है। सदस्य अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिये छोटे कर्ज समूह से ही कर्ज ले सकते हैं। समूह इन कर्जों पर ब्याज लेता है लेकिन यह साहूकार द्वारा लिये जाने वाले ब्याज से कम होता है। एक या दो वर्षों के बाद, अगर समूह नियमित रूप से बचत करता है, तो समूह बैंक से ऋण लेने के योग्य हो जाता है। ऋण समूह के नाम पर दिया जाता है और इसका मकसद सदस्यों के लिये स्वरोजगार के अवसरों का सृजन करना है। उदाहरण के लिये, सदस्यों को छोटे-छोटे कर्ज अपनी गिरवी जमीन छुड़वाने के लिये, कार्यशील पूंजी की जरूरतों (बीज, खाद, बांस, और कपड़े खरीदने के लिये), घर बनाने, सिलाई की मशीन, हथकरघा, पशु इत्यादि संपत्ति खरीदने के लिये दिये जाते हैं। बचत और ऋण गतिविधियों से संबंधी ज्यादातर महत्वपूर्ण निर्णय समूह के सदस्य स्वयं लेते हैं। समूह; दिये जाने वाले ऋण -उसका लक्ष्य, उसकी रकम, ब्याज दर, वापस लौटाने की अवधि आदि के बारे में निर्णय करता है। इस ऋण को लौटाने की जिम्मेदारी भी समूह की होती है। एक भी सदस्य अगर ऋण वापस नहीं लौटाता तो समूह के अन्य सदस्य इस मामले को गंभीरता से लेते हैं। इसी कारण, बैंक निर्धन महिलाओं को ऋण देने के लिये तैयार हो जाते हैं जब वे अपने को स्वयं सहायता समूहों में संगठित कर लेती

NOTES

है, यद्यपि उनके पास कोई ऋणाधार नहीं होता।स्वयं सहायता समूह कर्जदारों को ऋणाधार की कमी की समस्या से उबारने में मदद करते हैं। उन्हें समयानुसार विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं के लिये एक उचित ब्याज दर पर ऋण मिल जाता है। इसके अतिरिक्त यह समूह ग्रामीण क्षेत्रों के गरीबों को संगठित करने में मदद करते हैं। इससे न केवल महिलाएं आर्थिक रूप से स्वावलंबी हो जाती है, बल्कि समूह की नियमित बैठकों के जरिये लोगों को एक आम मंच मिलता है, जहां वह तरह-तरह के सामाजिक विषयों जैसे, स्वास्थ्य, पोषण और घरेलू हिंसा इत्यादि पर आपस में चर्चा कर पाती हैं।

गुजरात में महिलाओं की स्वयं सहायता समूह की बैठक

निष्कर्ष

हमने मुद्रा के आधुनिक रूपों और बैंकिंग प्रणाली से इसके संबंधों को देखा। एक तरफ जमाकर्ता अपना धन बैंकों में रखते हैं, दूसरी तरफ कर्जदार बैंकों से ऋण लेते हैं। आर्थिक गतिविधियों के लिये ऋण की जरूरत होती है। ऋण के सकारात्मक प्रभाव हो सकते हैं या कुछ परिस्थितियों में वे कर्जदार की स्थिति और बदतर कर सकते हैं। ऋण विभिन्न स्रोतों से उपलब्ध होता है। ये औपचारिक और अनौपचारिक दोनों तरह के स्रोत हो सकते हैं। औपचारिक और अनौपचारिक ऋणदाताओं में ऋण की शर्तों में बहुत फर्क हो सकता है। वर्तमान समय में, अमीर परिवार औपचारिक स्रोतों से ऋण लेते हैं जबकि गरीबों को अब भी अनौपचारिक स्रोतों पर निर्भर रहना पड़ता है। यह अनिवार्य है कि औपचारिक क्षेत्र के कुल ऋणों में वृद्धि हो, ताकि महंगे अनौपचारिक ऋण पर से निर्भरता कम हो। साथ ही,बैंकों और सहकारी समितियों इत्यादि से गरीबों को मिलने वाले औपचारिक ऋण का हिस्सा बढ़ना चाहिये। ये दोनो कदम विकास के लिये जरूरी है।

■■■

NOTES

इकाई-8 : वैश्वीकरण और भारतीय अर्थव्यवस्था

अन्तरदेशीय उत्पादन

बीसवीं शताब्दी के मध्य तक उत्पादन मुख्यतः देशों की सीमाओं के अंदर ही सीमित था। इन देशों की सीमाओं को लांघने वाली वस्तुओं में केवल कच्चा माल, खाद्य पदार्थ और तैयार उत्पाद ही थे। भारत जैसे उपनिवेशों से कच्चा माल एवं खाद्य पदार्थ निर्यात होते थे और तैयार वस्तुओं का आयात होता था। व्यापार ही दूरस्थ देशों को आपस में जोड़ने का मुख्य जरिया था। यह बड़ी कंपनियों, जिन्हे बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ कहते हैं, उनके परिदृश्य पर उभरने से पहले का युग था। एक बहुराष्ट्रीय कंपनी वह है, जो एक से अधिक देशों में उत्पादन पर नियंत्रण अथवा स्वामित्व रखती है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ उन प्रदेशों में कार्यालय तथा उत्पादन के लिये कारखाने स्थापित करती है, जहाँ उन्हें सस्ता श्रम एवं अन्य संसाधन मिल सकते हैं। उत्पादन लागत में कमी करने तथा अधिक लाभ कमाने के लिये बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ ऐसा करती हैं। निम्न उदाहरण पर विचार करते हैं।

एक बहुराष्ट्रीय कंपनी द्वारा उत्पादन का विस्तार

औद्योगिक उपकरण बनाने वाली एक बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनी संयुक्त राज्य अमेरिका के अनुसंधान केन्द्र में अपने उत्पादों का डिजाइन तैयार करती है। उसके पुर्ज़े चीन में विनिर्मित होते हैं। फिर इन्हें जहाज़ में लादकर मेक्सिको और पूर्वी यूरोप ले जाया जाता है, जहाँ उपकरण के पुर्ज़ों को जोड़ा जाता है और तैयार उत्पाद को विश्व भर में बेचा जाता है। इस बीच, कंपनी की ग्राहक सेवा का भारत स्थित कॉल सेंटरों के माध्यम से संचालन किया जाता है।

यह बंगलोर स्थित एक कॉल सेंटर है जो पर्याप्त दूरसंचार सुविधाओं और इंटरनेट से सुसज्जित है। यह विदेशी ग्राहकों को सूचना एवं मदद उपलब्ध कराता है।

इस उदाहरण में, बहुराष्ट्रीय कंपनी केवल वैश्विक स्तर पर ही अपना तैयार उत्पाद नहीं बेच रही है बल्कि अधिक महत्वपूर्ण यह है कि **वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन विश्व स्तर पर** कर रही है। परिणामतः उत्पादन प्रक्रिया क्रमशः जटिल ढंग से संगठित हुई है। उत्पादन-प्रक्रिया छोटे भागों में विभाजित है और विश्व भर में, फैली हुई है। ऊपर दिए गए उदाहरण में चीन एक सस्ता विनिर्माण केन्द्र होने का लाभ प्रदान करता है।

NOTES

मेक्सिको और पूर्वी यूरोप, अमेरिका और यूरोप के बाजारों से अपनी निकटता के कारण लाभप्रद है। भारत में अत्यंत कुशल इंजीनियर उपलब्ध हैं, जो उत्पादन के तकनीकी पक्षों को समझ सकते हैं। यहाँ अंग्रेजी बोलने वाले शिक्षित युवक भी हैं, जो ग्राहक देखभाल सेवायें उपलब्ध करा सकते हैं। ये सभी चीज़ें बहुराष्ट्रीय कंपनी की लागत का लगभग 50-60 प्रतिशत बचत कर सकती हैं। अतः वास्तव में, सीमाओं के पार बहुराष्ट्रीय उत्पादन प्रक्रिया के प्रसार से असीमित लाभ हो सकता है।

विश्व-भर के उत्पादन को एक-दूसरे से जोड़ना

सामान्यतः बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ उसी स्थान पर उत्पादन इकाई स्थापित करती हैं जो बाजार के नजदीक हो, जहाँ कम लागत पर कुशल और अकुशल श्रम उपलब्ध हो और जहाँ उत्पादन के अन्य कारकों की उपलब्धता सुनिश्चित हो। साथ ही, बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ सरकारी नीतियों पर भी नजर रखती है, जो उनके हितों की देखभाल करती है।

इन परिस्थितियों को सुनिश्चित करने के बाद ही बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ उत्पादन के लिए कार्यालयों और कारखानों की स्थापना करती है। परिसंपत्तियों जैसे- भूमि, भवन, मशीन और अन्य उपकरणों की खरीद में व्यय की गई मुद्रा को निवेश कहते हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा किए गए निवेश को विदेशी निवेश कहते हैं। कोई भी निवेश इस आशा से किया जाता है कि ये परिसंपत्तियाँ लाभ अर्जित करेंगी।

कभी-कभी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ इन देशों की स्थानीय कंपनियों के साथ संयुक्त रूप से उत्पादन करती हैं। संयुक्त उत्पादन से स्थानीय कंपनी को दोहरा लाभ होता है। पहला बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अतिरिक्त निवेश के लिए धन प्रदान कर सकती हैं, जैसे कि तीव्र उत्पादन के लिए मशीनें खरीदने के लिए। दूसरा, बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ उत्पादन की नवीनतम प्रौद्योगिकी अपने साथ ला सकती है।

लेकिन, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के निवेश का सबसे आम रास्ता स्थानीय कंपनियों को खरीदना और उसके बाद उत्पादन का प्रसार करना है। अपार संपदा वाली बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ यह आसानी से कर सकती हैं।

वास्तव में कई शीर्षस्थ बहुराष्ट्रीय कंपनियों की संपत्ति विकासशील देशों की सरकारों के सम्पूर्ण बजट से भी अधिक है। ऐसी अपार संपत्ति वाली बहुराष्ट्रीय कंपनियों की शक्ति और प्रभाव बहुत अधिक है।

बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ एक अन्य तरीके से उत्पादन नियंत्रित करती हैं। विकसित देशों की बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ छोटे उत्पादकों को उत्पादन का ऑर्डर देती हैं। वस्तु, जूते-चप्पल एवं खेल के सामान ऐसे उद्योग हैं, जहाँ विश्वभर में बड़ी संख्या में छोटे उत्पादकों द्वारा उत्पादन किया जाता है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों को इन उत्पादों की आपूर्ति की जाती है। फिर इन्हें अपने ब्राण्ड नाम से बहुराष्ट्रीय कंपनी ग्राहकों को बेचती हैं। इन बड़ी कंपनियों में दूरस्थ उत्पादकों के मूल्य, गुणवत्ता, आपूर्ति और श्रम-शर्तों का निर्धारण करने की प्रचण्ड क्षमता होती है।

भारतीय मज़दूरों द्वारा निर्मित कारें, बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा विदेशों में बिक्री के लिए लादी जा रही है।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ कई तरह से अपने उत्पादन कार्य का प्रसार कर रही हैं और विश्व के कई देशों की स्थानीय कंपनियों के साथ पारस्परिक संबंध स्थापित कर रही हैं। स्थानीय

NOTES

कंपनियों क साथ साझेदारी द्वारा, आपूर्ति के लिए स्थानीय कंपनियों का इस्तेमाल करके और स्थानीय कंपनियों से निकट प्रतिस्पर्धा करके अथवा उन्हें खरीद कर बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ दूरस्थ स्थानों के उत्पादन पर अपना प्रभाव जमा रही हैं। परिणामतः **दूर-दूर स्थानों पर फैला उत्पादन परस्पर संबंधित हो रहा है।**

विदेश व्यापार और बाज़ारों का एकीकरण

लम्बे समय से विदेश व्यापार विभिन्न देशों को आपस में जोड़ने का मुख्य माध्यम रहा है। इतिहास में हमने भारत और दक्षिण एशिया को पूर्व और पश्चिम के बाज़ारों से जोड़ने वाले व्यापार मार्गों और इन मार्गों से होने वाले गहन व्यापार के बारे में पढ़ा है। व्यापारिक हितों के कारण ही व्यापारिक कंपनियाँ जैसे, ईस्ट इंडिया कंपनी भारत की ओर आकर्षित हुई।

विदेश व्यापार घरेलू बाजारों अर्थात् अपने देश के बाजारों से बाहर के बाजारों में पहुंचने के लिए उत्पादको को एक अवसर प्रदान करता है। उत्पादक केवल अपने देश के बाजारों में ही अपने उत्पाद नहीं बेच सकते हैं, बल्कि विश्व के अन्य देशों के बाजारों में भी प्रतिस्पर्धा कर सकते हैं। इसी प्रकार, दूसरे देशों में उत्पादित वस्तुओं के आयात से खरीददारों के समक्ष उन वस्तुओं के घरेलू उत्पादन के अन्य विकल्पों का विस्तार होता है।

सामान्यतः व्यापार के खुलने से वस्तुओं का एक बाजार से दूसरे बाजार में आवागमन होता है। बाजार में वस्तुओं के विकल्प बढ़ जाते हैं। दो बाजारों में एक ही वस्तु का मूल्य एक समान होने लगता है। अब दो देशों के उत्पादक एक दूसरे से हजारों मील दूर होकर भी एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा कर सकते हैं। **इस प्रकार, विदेश व्यापार विभिन्न देशों के बाजारों को जोड़ने का या एकीकरण में सहायक होता है।**

वैश्वीकरण क्या है?

विगत दो तीन दशकों से अधिकांश बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ विश्व में उन स्थानों की तलाश कर रही है, जो उनके उत्पादन के लिए सस्ते हों। इन देशों में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के निवेश में वृद्धि हो रही है, साथ ही विभिन्न देशों के बीच विदेश व्यापार में भी तीव्र वृद्धि हो रही है। विदेश व्यापार का एक बड़ा भाग बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा नियंत्रित है। जैसे, भारत में फोर्ड मोटर्स का कार सयंत्र, केवल भारत के लिए ही कारों का निर्माण नहीं करता, बल्कि वह अन्य विकासशील देशों को कारें और विश्व भर में अपने कारखानों के लिए कार-पुर्जों का भी निर्यात करता है। इसी प्रकार, अधिकांश बहुराष्ट्रीय कंपनियों के क्रियाकलाप में वस्तुओं और सेवाओं का बड़े पैमाने पर व्यापार शामिल होता है।

अधिक विदेश व्यापार और अधिक विदेशी निवेश के परिणामस्वरूप विभिन्न देशों के बाजारों एवं उत्पादनों में एकीकरण हो रहा है। **विभिन्न देशों के बीच परस्पर संबंध और तीव्र एकीकरण की प्रक्रिया ही वैश्वीकरण है।** बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ वैश्वीकरण की प्रक्रिया में मुख्य भूमिका निभा रही हैं। **विभिन्न देशों के बीच अधिक से अधिक वस्तुओं और सेवाओं, निवेश और प्रौद्योगिकी का आदान-प्रदान हो रहा है।** विगत कुछ दशकों की तुलना में विश्व के अधिकांश भाग एक-दूसरे के अपेक्षाकृत अधिक सम्पर्क में आए हैं।

वस्तुओं, सेवाओं, निवेशों और प्रौद्योगिकी के अतिरिक्त विभिन्न देशों को आपस में जोड़ने का एक और माध्यम हो सकता है। यह माध्यम है विभिन्न देशों के बीच लोगों का आवागमन। प्रायः लोग बेहतर आय, बेहतर रोज़गार एवं शिक्षा की तलाश में एक देश से दूसरे देश में आवागमन करते हैं किन्तु, विगत कुछ दशकों में अनेक प्रतिबंधों के कारण विभिन्न देशों के बीच लोगों के आवागमन में अधिक वृद्धि नहीं हुई है।

वैश्वीकरण को संभव बनाने वाले कारक

प्रौद्योगिकी में तीव्र उन्नति वह मुख्य कारक है जिसने वैश्वीकरण की प्रक्रिया को उत्प्रेरित किया। जैसे, विगत पचास वर्षों में परिवहन प्रौद्योगिकी में बहुत उन्नति हुई है। इसने लम्बी दूरियों तक वस्तुओं की तीव्रतर आपूर्ति को कम लागत पर संभव किया है।

NOTES

वस्तुओं के परिवहन के लिए कंटेनर

वस्तुओं को कंटेनरों में रखा गया है, जिससे इन्हें जहाज़ों, रेलों, वायुयानों एवं ट्रकों पर बिना क्षति के लादा जा सके। कंटेनरों से ढुलाई-लागत में भारी बचत हुई है और माल को बाज़ारों तक पहुंचाने की गति में वृद्धि हुई है। इसी प्रकार, वायु यातायात की लागत में गिरावट आयी है। परिणामतः वायुमार्ग से अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में वस्तुओं का परिवहन संभव हुआ है।

इससे भी अधिक उल्लेखनीय है **सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी** का विकास। वर्तमान समय में दूरसंचार, कंप्यूटर और इंटरनेट के क्षेत्र में प्रौद्योगिकी द्रुत गति से परिवर्तित हो रही है। दूरसंचार सुविधाओं (टेलीग्राफ, टेलीफोन, मोबाइल फोन एवं फैक्स) का विश्व भर में एक-दूसरे से सम्पर्क करने, सूचनाओं को तत्काल प्राप्त करने और दूरवर्ती क्षेत्रों से संवाद करने में प्रयोग किया जाता है। ये सुविधाएँ संचार उपग्रहों द्वारा सुगम हुई हैं। जैसे कि आप जानते होंगे, जीवन के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में कम्प्यूटरों का प्रवेश हो गया है। आपने इंटरनेट के चमत्कारिक संसार में भी प्रवेश किया होगा, जहाँ जो कुछ भी आप जानना चाहते हैं, लगभग उसकी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं और सूचनाओं को आपस में बाँट सकते हैं। इंटरनेट से हम तत्काल इलेक्ट्रॉनिक डाक (ई-मेल) भेज सकते हैं और अत्यंत कम मूल्य पर विश्व-भर में बात (वॉयस मेल) कर सकते हैं।

विदेश व्यापार तथा विदेशी निवेश का उदारीकरण

हम भारत में चीनी खिलौनों के आयात वाले उदाहरण पर विचार करते हैं। मान लीजिए कि भारत सरकार खिलौनों के आयात पर कर लगाती है। तब क्या होगा? इसका अर्थ है कि जो इन खिलौनों का आयात करना चाहते हैं, उन्हें इन पर कर देना होगा। कर के कारण खरीददारों को आयातित खिलौनों की अधिक कीमत चुकानी होगी। चीन के खिलौने अब भारत के बाज़ारों में इतने सस्ते नहीं रह जाएंगे और चीन से उनका आयात स्वतः कम हो जाएगा। भारत के खिलौना-निर्माता अधिक समृद्ध हो जाएंगे।

आयात पर कर, व्यापार अवरोधक का एक उदाहरण है। इसे अवरोधक इसलिए कहा गया है, क्योंकि यह कुछ प्रतिबंध लगाता है। सरकारें व्यापार अवरोधक का प्रयोग विदेश व्यापार में वृद्धि या कटौती (नियमित करने) करने और देश में किस प्रकार की वस्तुएँ कितनी मात्रा में आयातित होनी चाहिए, यह निर्णय करने के लिए कर सकती है।

स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार ने विदेश व्यापार एवं विदेशी निवेश पर प्रतिबंध लगा रखा था। देश के उत्पादकों को विदेशी प्रतिस्पर्धा से संरक्षण प्रदान करने के लिए यह अनिवार्य माना गया 1950 और 1960 के दशकों में उद्योगों का उदय हो रहा था और इस अवस्था में आयात से प्रतिस्पर्धा इन उद्योगों को बढ़ने नहीं देती। इसीलिए, भारत ने केवल अनिवार्य चीजों जैसे, मशीनरी, उर्वरक और पेट्रोलियम के आयात की ही अनुमति दी। ध्यान दीजिए कि सभी विकसित देशों ने विकास के प्रारंभिक चरणों में घरेलू उत्पादकों को विभिन्न तरीकों से संरक्षण दिया है।

भारत में करीब सन् 1991 के प्रारंभ से नीतियों में कुछ दूरगामी परिवर्तन किए गए। सरकार ने यह निश्चय किया कि भारतीय उत्पादकों के लिए विश्व के उत्पादकों से प्रतिस्पर्धा करने का समय आ गया है। यह महसूस किया गया कि प्रतिस्पर्धा से देश में उत्पादकों के प्रदर्शन में सुधार होगा, क्योंकि उन्हें अपनी गुणवत्ता में सुधार करना होगा। इस निर्णय का प्रभावशाली अंतर्राष्ट्रीय संगठनों ने समर्थन किया।

NOTES

अतः विदेश व्यापार एवं विदेशी निवेश पर से अवरोधों को काफी हद तक हटा दिया गया। इसका अर्थ है कि वस्तुओं का आयात- निर्यात सुगमता से किया जा सकता था और विदेशी कंपनियाँ यहाँ अपने कार्यालय और कारखाने स्थापित कर सकती थीं।

सरकार द्वारा अवरोधों अथवा प्रतिबंधों को हटाने की प्रक्रिया उदारीकरण के नाम से जानी जाती है। व्यापार के उदारीकरण से व्यावसायियों को मुक्त रूप से निर्णय लेने की अनुमति मिली है कि वे क्या आयात या निर्यात करना चाहते हैं। सरकार पहले की तुलना में कम नियंत्रण करती है और इसलिए उसे अधिक उदार कहा जाता है।

विश्व व्यापार संगठन

कुछ बहुत प्रभावशाली अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों ने भारत में विदेश व्यापार एवं विदेशी निवेश के उदारीकरण का समर्थन किया इन संगठनों का मानना है कि विदेश व्यापार और विदेशी निवेश पर सभी अवरोधक हानिकारक हैं। कोई अवरोधक नहीं होना चाहिए। देशों के बीच मुक्त व्यापार होना चाहिए। विश्व के सभी देशों को अपनी नीतियाँ उदार बनानी चाहिए।

विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू. टी.ओ.)एक ऐसा संगठन है, जिसका ध्येय अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को उदार बनाना है। विकसित देशों की पहल पर शुरू किया गया विश्व व्यापार संगठन अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से संबंधित नियमों को निर्धारित करता है और यह देखता है कि इन नियमों का पालन हो। जुलाई 2016 के आंकड़ों के अनुसार, वर्तमान में विश्व के लगभग 165 देश विश्व व्यापार संगठन के सदस्य हैं।

यद्यपि विश्व व्यापार संगठन सभी देशों को मुक्त व्यापार की सुविधा देता है, परंतु व्यवहार में यह देखा गया है कि विकसित देशों ने अनुचित ढंग से व्यापार अवरोधकों को बरकरार रखा है। दूसरी ओर, विश्व व्यापार संगठन के नियमों ने विकासशील देशों को व्यापार अवरोधों को हटाने के लिए विवश किया है। इसका एक उदाहरण कृषि व्यापार पर वर्तमान बहस है।

व्यापार व्यवहारों पर वाद-विवाद

संयुक्त राज्य अमेरिका में एक आदर्श कपास क्षेत्र, जिसमें हजारों एकड़ भूमि है और जिसका स्वामित्व एक बड़ी कारपोरेट कंपनी के पास है।

भारत में अधिकांश रोजगार और सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) का महत्वपूर्ण भाग कृषि क्षेत्र प्रदान करता है। इसकी तुलना में विकसित देशों, जैसे अमेरिका के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का हिस्सा मात्र एक प्रतिशत और कुल रोजगार में केवल 0.5 प्रतिशत है। फिर भी अमेरिका के कृषि क्षेत्र में कार्यरत इतने कम प्रतिशत लोग भी अमेरिकी सरकार से उत्पादन और दूसरे देशों को निर्यात करने के लिए बहुत अधिक धन राशि प्राप्त करते हैं। इस भारी धन राशि के कारण अमेरिकी किसान अपने कृषि उत्पादों को असाधारण रूप से कम कीमत पर बेच सकते हैं। अधिशेष कृषि उत्पादों को दूसरे देशों के बाजारों में कम कीमत पर बेचा जाता है जो इन देशों के कृषकों को बुरी तरह प्रभावित करते हैं।

यही कारण है कि विकासशील देश, विकसित देशों की सरकारों से सवाल कर रहे हैं कि 'हमने विश्व व्यापार संगठन के नियमों के अनुसार व्यापार अवरोधकों को कम कर दिया, लेकिन आप लोगों ने विश्व

NOTES

व्यापार संगठन के नियमों को नज़र-अंदाज़ कर दिया और अपने किसानों को भारी धन राशि देना बरकरार रखा है। आप लोगों ने हमारी सरकारों को अपने किसानों की सहायता बंद करने को कहा परन्तु आप स्वयं यहीं काम कर रहे हैं। **क्या यह मुक्त और न्यायसंगत व्यापार है?'**

भारत में वैश्वीकरण का प्रभाव

विगत बीस वर्षों में भारतीय अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण ने एक लम्बी दूरी तय की है। इसका लोगों के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा है? हम कुछ प्रमाण देखते हैं।

वैश्वीकरण और उत्पादकों- स्थानीय एवं विदेशी दोनों, के बिच वृहतर प्रतिस्पर्धा से उपभोक्ताओं, विशेषकर शहरी क्षेत्र में धनी वर्ग के उपभोक्ताओं को लाभ हुआ है। इन उपभोक्ताओं के समक्ष पहले से अधिक विकल्प है और वे अब अनेक उत्पादों की उत्कृष्ट गुणवत्ता और कम कीमत से लाभान्वित हो रहे हैं। परिणामतः ये लोग पहले की तुलना में आज अपेक्षाकृत उच्चतर जीवन स्तर का आनन्द ले रहे हैं। उत्पादकों और श्रमिकों पर वैश्वीकरण का एक समान प्रभाव नहीं पड़ा है।

पहला, विगत 20 वर्षों में **बहुराष्ट्रीय कंपनियों** ने भारत में अपने निवेश में वृद्धि की है, जिसका अर्थ है कि भारत में निवेश करना उनके लिए लाभप्रद रहा है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने शहरी इलाकों के उद्योगों जैसे- सेलफोन, मोटर गाड़ियों, इलेक्ट्रॉनिक उत्पादों, ठंडे पेय पदार्थों और जंक खाद्य पदार्थों एवं बैंकिंग जैसी सेवाओं के निवेश में रूचि दिखाई है। इन उत्पादों के अधिकांश खरीददार संपन्न वर्ग के लोग हैं। इन उद्योगों और सेवाओं में नये रोजगार उत्पन्न हुए हैं। साथ ही, इन उद्योगों को कच्चे माल इत्यादि की आपूर्ति करने वाली स्थानीय कंपनियाँ समृद्ध हुई।

विदेशी निवेश आकर्षित करने के लिए उठाए गए कदम

हाल के वर्षों में भारत की केन्द्र एवं राज्य सरकारें भारत में निवेश हेतु विदेशी कंपनियों को आकर्षित करने के लिए विशेष कदम उठा रही हैं। औद्योगिक क्षेत्रों, जिन्हें विशेष आर्थिक क्षेत्र कहा जाता है, की स्थापना की जा रही है। विशेष आर्थिक क्षेत्रों में विश्व स्तरीय सुविधाएँ - बिजली, पानी, सड़क, परिवहन, भण्डारण, मनोरंजन और शैक्षिक सुविधाएँ उपलब्ध होनी चाहिए। विशेष आर्थिक क्षेत्र में उत्पादन इकाइयाँ स्थापित करने वाली कंपनियों को आरंभिक पाँच वर्षों तक कोई कर नहीं देना पड़ता है।

विदेशी निवेश आकर्षित करने हेतु सरकार ने श्रम-कानूनों में लचीलापन लाने की अनुमति दे दी है। संगठित क्षेत्र की कंपनियों को कुछ नियमों का अनुपालन करना पड़ता है। जिसका उद्देश्य श्रमिक अधिकारों का संरक्षण करना है। हाल के वर्षों में सरकार ने कंपनियों को अनेक नियमों से छूट लेने की अनुमति दे दी है। अब नियमित आधार पर श्रमिकों को रोजगार देने के बजाय कंपनियों में जब काम का अधिक दबाव होता है, तो लोचदार ढंग से छोटी अवधि के लिए श्रमिकों को कार्य पर रखती हैं। कंपनी की श्रम लागत में कटौती करने के लिए ऐसा किया जाता है। फिर भी, विदेशी कंपनियाँ अभी भी संतुष्ट नहीं हैं और श्रम कानूनों में और अधिक लचीलेपन की मांग कर रही हैं।

अनेक शीर्ष भारतीय कंपनियाँ बड़ी हुई प्रतिस्पर्धा से लाभान्वित हुई हैं। इन कंपनियों ने नवीनतम प्रौद्योगिकी और उत्पादन प्रणाली में निवेश किया और अपने उत्पादन - मानकों को ऊंचा उठाया है। कुछ ने विदेशी कंपनियों के साथ सफलतापूर्वक सहयोग कर लाभ अर्जित किया।

इससे भी आगे, वैश्वीकरण ने कुछ बड़ी भारतीय कंपनियों को बहुराष्ट्रीय कंपनियों के रूप में उभरने के योग्य बनाया है। टाटा मोटर्स (मोटर गाडिय़ाँ) , इंफोसिस (आई.टी.), रैनबैक्सी (दवाईयाँ), एशियन पेंट्स (पेंट), सुंदरम फास्नर्स (नट और बोल्ट) कुछ ऐसी भारतीय कंपनियाँ हैं, जो विश्व स्तर पर अपने क्रियाकलापों का प्रसार कर रही हैं।

NOTES

वैश्वीकरण ने सेवा प्रदाता कंपनियों विशेषकर सूचना और संचार प्रौद्योगिकी वाली कंपनियों के लिए नये अवसरों का सृजन किया है। भारतीय कंपनी द्वारा लंदन स्थित कंपनी के लिए पत्रिका का प्रकाशन और कॉल सेंटर इसके उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त आंकड़ा प्रविष्टि (डाटा एन्ट्री), लेखाकरण, प्रशासनिक कार्य, इंजीनियरिंग जैसी कई सेवायें भारत जैसे देशों में अब सस्ते में उपलब्ध है और विकसित देशों को निर्यात की जाती हैं।

छोटे उत्पादक- प्रतिस्पर्धा करो या नष्ट हो जाओ

वेश्वीकरण ने बड़ी संख्या में छोटे उत्पादकों और श्रमिकों के लिए बड़ी चुनौतियाँ खड़ी की हैं।

बैटरी, संधारित्र, प्लास्टिक, खिलौने, टायरों, डेयरी उत्पादों एवं खाद्य तेल के उद्योग कुछ ऐसे उदाहरण हैं, जहाँ प्रतिस्पर्धा के कारण छोटे विनिर्माताओं पर कड़ी मार पड़ी है। कई इकाईयाँ बंद हो गई, जिसके चलते अनेक श्रमिक बेरोज़गार हो गए। भारत में लघु उद्योगों में कृषि के बाद सबसे अधिक श्रमिक (2 करोड़) नियोजित हैं।

प्रतिस्पर्धा और अनिश्चित रोज़गार

वैश्वीकरण और प्रतिस्पर्धा के दबाव ने श्रमिकों के जीवन को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। बढ़ती प्रतिस्पर्धा के कारण अधिकांश नियोक्ता इन दिनों श्रमिकों को रोज़गार देने में लचीलापन पसंद करते हैं। इसका अर्थ है कि श्रमिकों का रोज़गार अब सुनिश्चित नहीं है।

अमेरिका और यूरोप में वस्त्र उद्योग की बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारतीय निर्यातकों को वस्तुओं की आपूर्ति के लिए आर्डर देती है। विश्वव्यापी नेटवर्क से युक्त बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ लाभ को अधिकतम करने के लिए सबसे सस्ती वस्तुएँ खोजती हैं। इन बड़े आर्डरों को प्राप्त करने के लिए भारतीय वस्त्र निर्यातक अपनी लागत कम करने की कड़ी कोशिश करते हैं। चूँकि कच्चे माल पर लागत में कटौती नहीं की जा सकती, इसलिए नियोक्ता श्रम-लागत में कटौती करने की कोशिश करते हैं। जहाँ पहले कारखाने श्रमिकों को स्थायी आधार पर रोजगार देते थे, वहीं वे अब अस्थायी रोजगार देते हैं, ताकि श्रमिकों को वर्ष भर वेतन नहीं देना पड़े। श्रमिकों को बहुत लम्बे कार्य- घंटों तक काम करना पड़ता है और अत्यधिक माँग की अवधि में नियमित रूप से रात में भी काम करना पड़ता है। मजदूरी काफी कम होती है और श्रमिक अपनी रोज़ी-रोटी के लिए अतिरिक्त समय में भी काम करने के लिए विवश हो जाते हैं।

हालाँकि वस्त्र निर्यातकों के बीच प्रतिस्पर्धा से बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अधिक लाभ कमाने में मदद मिली है, परन्तु वैश्वीकरण के कारण मिले लाभ में श्रमिकों को न्यायसंगत हिस्सा नहीं दिया गया है।

उपरोक्त कार्य परिस्थितियाँ और श्रमिकों की कठिनाईयाँ भारत की अनेक औद्योगिक इकाइयों और सेवाओं में सामान्य बात हो गई है। आज अधिकांश श्रमिक असंगठित क्षेत्र में नियोजित हैं। यहीं नहीं, संगठित क्षेत्र में क्रमशः कार्य-परिस्थितियाँ असंगठित क्षेत्र के समान होती जा रही है। संगठित क्षेत्रक के श्रमिकों को अब कोई संरक्षण और लाभ नहीं मिलता, जिसका वह पहले उपभोग करते थे।

न्यायसंगत वैश्वीकरण के लिए संघर्ष

वैश्वीकरण सभी के लिए लाभप्रद नहीं रहा है। शिक्षित, कुशल और संपन्न लोगों ने वैश्वीकरण से मिले नये अवसरों का सर्वोत्तम उपयोग किया है। दूसरी ओर, अनेक लोगों को लाभ में हिस्सा नहीं मिला है।

चूँकि वैश्वीकरण अब एक सच्चाई है, तो वैश्वीकरण को अधिक 'न्यायसंगत' कैसे बनाया जा सकता है? न्यायसंगत वैश्वीकरण सभी के लिए अवसर प्रदान करेगा और यह सुनिश्चित भी करेगा कि वैश्वीकरण के लाभों में सबकी बेहतर हिस्सेदारी हो।

NOTES

सरकार इसे संभव बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। इसकी नीतियों को केवल धनी और प्रभावशाली लोगों को ही नहीं बल्कि देश के सभी लोगों के हितों का संरक्षण करना चाहिए। आपने सरकार द्वारा किए जाने वाले कुछ उपायों के बारे में पढ़ा है। जैसे, सरकार यह सुनिश्चित कर सकती है कि श्रमिक कानूनों का उचित कार्यान्वयन हो और श्रमिकों को अपने अधिकार मिले। यह छोटे उत्पादकों को कार्य-निष्पादन में सुधार के लिए उस समय तक मदद कर सकती है, जब तक वे प्रतिस्पर्धा के लिए सक्षम न हो जाये। यदि जरूरी हुआ तो सरकार व्यापार और निवेश अवरोधकों का उपयोग कर सकती है। यह 'न्यायसंगत नियमों' के लिए विश्व व्यापार संगठन से समझौते भी कर सकती है। विश्व व्यापार संगठन में विकसित देशों के वर्चस्व के विरुद्ध समान हितों वाले विकासशील देशों को मिलकर लड़ना होगा।

विगत कुछ वर्षों में, बड़े अभियानों और जनसंगठनों के प्रतिनिधियों ने विश्व व्यापार संगठन के व्यापार और निवेश से संबंधित महत्वपूर्ण निर्णयों को प्रभावित किया है। यह प्रदर्शित करता है कि जनता भी न्यायसंगत वैश्वीकरण के संघर्ष में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

निष्कर्ष

वैश्वीकरण विभिन्न देशों के बीच तीव्र एकीकरण की प्रक्रिया है । यह अधिकाधिक विदेशी निवेश और विदेश व्यापार के द्वारा संभव हो रहा है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ वैश्वीकरण की प्रक्रिया में मुख्य भूमिका निभा रही हैं। अधिक से अधिक बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ विश्व के उन स्थानों की खोज कर रही हैं, जो उनके उत्पादन के लिए ज्यादा सस्ते हों। परिणामतः उत्पादन कार्य जटिल ढंग से संगठित किया जा रहा है।

देशों के बीच उत्पादन को संगठित करने में प्रौद्योगिकी, विशेषकर सूचना प्रौद्योगिकी ने एक बड़ी भूमिका निभायी है। साथ ही, व्यापार और निवेश के उदारीकरण ने व्यापार और निवेश अवरोधकों को हटाकर वैश्वीकरण को सुगम बनाया है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर, विश्व व्यापार संगठन ने व्यापार और निवेश के उदारीकरण के लिए विकासशील देशों पर दबाव डाला है।

जबकि वैश्वीकरण से धनी उपभोक्ता और कुशल, शिक्षित एवं धनी उत्पादक ही लाभान्वित हुए हैं परन्तु बढ़ती प्रतिस्पर्धा से अनेक छोटे उत्पादक और श्रमिक प्रभावित हुए हैं। न्यायसंगत वैश्वीकरण सभी के लिए अवसरों का सृजन करेगा और यह भी सुनिश्चित करेगा कि वैश्वीकरण के लाभों में सभी की बेहतर हिस्सेदारी हो।

■■■

KOTHARI
GROUP OF INSTITUTIONS

NOTES

इकाई-9 : उपभोक्ता अधिकार

बाज़ार में उपभोक्ता

बाज़ार में हमारी भागीदारी उत्पादक और उपभोक्ता दोनों रूपों में होती है। वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादक के रूप में, हम कृषि उद्योग या सेवा जैसे क्षेत्रों में कार्यरत हो सकते हैं। उपभोक्ताओं की भागीदारी बाजार में तब होती है जब वे अपनी आवश्यकतानुसार वस्तुओं या सेवाओं को खरीदते हैं। उपभोक्ता के रूप में लोगों द्वारा उपभोग किये जाने वाली ये अंतिम वस्तुएं होती हैं।

हमने विकास को बढ़ावा देने के लिये जरूरी नियमों और नियंत्रणों या इसके लिये उठाए गये कदमों की आवश्यकता का वर्णन किया है। इनका महत्व असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों की सुरक्षा के लिये उसी तरह हो सकता है, जिस तरह साहूकारों द्वारा लगाए जाने वाले उच्च ब्याज दर से लोगों को बचाने के लिये नियमों और नियंत्रणों की जरूरत होती है। इसी प्रकार से पर्यावरण की सुरक्षा के लिये नियमों एवं विनियमों की आवश्यकता है। उदाहरण के लिये, अनौपचारिक क्षेत्रों के साहूकार कर्जदार पर बंधन डालने के लिये तरह-तरह के दांव-पेच अपनाते हैं। सामयिक ऋण के कारण वे उत्पादक को उत्पाद निम्न दर पर बेचने के लिये मजबूर कर सकते हैं। इसी प्रकार असंगठित क्षेत्र में काम करने वाले बहुत से लोगों को निम्न वेतन पर कार्य करना पड़ता है और उन परिस्थितियों को झेलना पड़ता है, जो न्यायोचित नहीं होती है और प्रायः उनके स्वास्थ्य के लिये हानिकारक भी होती है। ऐसे शोषण को रोकने के लिये और उनकी सुरक्षा हेतु हमने नियमों एवं विनियमो की बात की है। ऐसी कई संस्थाएं है जिन्होंने यह सुनिश्चित करने की लिये लम्बा संघर्ष किया है कि इन नियमों का अनुपालन हो।

बाजार में भी उपभोक्ताओं की सुरक्षा के लिये नियम एवं विनियमों की आवश्यकता होती है, क्योंकि अकेला उपभोक्ता प्रायः स्वयं को कमजोर स्थिति में पाता है। खरीदी गयी वस्तु या सेवा के बारे में जब भी कोई शिकायत होती है, तो विक्रेता सारा उत्तरदायित्व क्रेता पर डालने का प्रयास करता है। बाज़ार में शोषण कई रूपों में होता है।उदाहरणार्थ कभी-कभी व्यापारी अनुचित व्यापार करने लग जाते हैं, जैसे दुकानदार उचित वज़न से कम वज़न तौलते हैं या व्यापारी उन शुल्कों को जोड़ देते हैं, जिनका वर्णन पहले न किया गया हो या मिलावटी/दोषपूर्ण वस्तुएं बेची जाती हैं। जब उत्पादक थोड़े और शक्तिशाली होते हैं और उपभोक्ता कम मात्रा में खरीददारी करते हैं और बिखरे हुए होते हैं, तो बाजार उचित तरीके से कार्य नहीं करता है। विशेष रूप से यह स्थिति तब होती है, जब इन वस्तुओं का उत्पादन बड़ी कंपनियाँ कर रही हों। अधिक पूंजीवाली, शक्तिशाली और समृद्ध कंपनियाँ विभिन्न प्रकार से चालाकीपूर्वक बाजार को प्रभावित कर सकती है। उपभोक्ताओं को आकर्षित करने के लिये वे समय-समय पर मीडिया और अन्य स्रोतों से गलत सूचना देते हैं।

उपभोक्ता आंदोलन

उपभोक्ता आंदोलन का प्रारंभ उपभोक्ताओं के असंतोष के कारण हुआ, क्योंकि विक्रेता कई अनुचित व्यावसायिक व्यवहारों में शामिल होते थे। बाजार में उपभोक्ता को शोषण से बचाने के लिये कोई कानूनी व्यवस्था उपलब्ध नहीं थी। लम्बे समय तक, जब एक उपभोक्ता एक विशेष ब्रांड उत्पाद या दुकान से संतुष्ट नहीं होता था तो सामान्यतः वह उस ब्रांड उत्पाद को खरीदना बंद कर देता था। यह मान लिया जाता था कि यह उपभोक्ता की जिम्मेदारी है कि एक वस्तु या सेवा को खरीदते वक्त वह सावधानी बरते। संस्थाओं को लोगों ने जागरुकता लाने में,भारत और पूरे विश्व में कई वर्ष लग गये। इसने वस्तुओं और सेवाओं की गुणवत्ता सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी विक्रेताओं पर भी डाल दी।

भारत में सामाजिक बल के रूप में उपभोक्ता आंदोलन का जन्म, अनैतिक और अनुचित व्यवसाय कार्यों से उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करने और प्रोत्साहित करने की आवश्यकता के साथ हुआ। अत्यधिक

NOTES

खाद्य कमी, जमाखोरी, कालाबाजारी, खाद्य पदार्थों एवं खाद्य तेल में मिलावट की वजह से 1960 के दशक में व्यवस्थित रूप से उपभोक्ता आंदोलन का उदय हुआ। 1970 के दशक तक उपभोक्ता संस्थाएं वृहत् स्तर पर उपभोक्ता अधिकार से संबंधित आलेखों के लेखन और प्रदर्शनी का आयोजन का कार्य करने लगीं थी। उन्होंने सड़क यात्री परिवहन में अत्यधिक भीड़-भाड़ और राशन दुकानों में होने वाले अनुचित कार्यों पर नजर रखने के लिये उपभोक्ता दल बनाया। हाल में, भारत में उपभोक्ता दलों की संख्या में भारी वृद्धि हुई है।

उपभोक्ता इंटरनेशनल

1985 में संयुक्त राष्ट्र ने उपभोक्ता सुरक्षा के लिये संयुक्त राष्ट्र के दिशा-निर्देशों को अपनाया । यह उपभोक्ताओं की सुरक्षा के लिये उपयुक्त तरीके अपनाने हेतु राष्ट्रों के लिये और ऐसा करने के लिये अपनी सरकारों को मजबूर करने हेतु उपभोक्ता की वकालत करने वाले समूह के लिये एक हथियार था। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यह उपभोक्ता आंदोलन का आधार बना। आज उपभोक्ता इंटरनेशनल 115 से भी अधिक देशों में 220 संस्थाओं की एक संरक्षक संस्था बन गई है।

इन सभी प्रयासों के परिणामस्वरूप, यह आंदोलन वृहत स्तर पर उपभोक्ताओं के हितों के खिलाफ और अनुचित व्यवसाय शैली को सुधारने के लिये व्यावसायिक कंपनियों और सरकार दोनों पर दबाव डालने में सफल हुआ । 1986 में भारत सरकार द्वारा एक बड़ा कदम उठाया गया। यह उपभोक्ता सुरक्षा अधिनियम, 1986 कानून का बनना था, जो COPRA के नाम से प्रसिद्ध है।

वस्तुओं और सेवाओं के बारें में जानकारी

जब आप कोई वस्तु खरीदेंगे तो उसके पैकेट पर कुछ खास जानकारियाँ पाएंगे। ये जानकारियाँ उस वस्तु के अवयवों, मूल्य, बैच संख्या, निर्माण की तारीख, खराब होने की अंतिम तिथि और वस्तु बनाने वाले के पते के बारे में होती है। जब हम कोई दवा खरीदते हैं तो उस दवा के उचित प्रयोग के बारे में निर्देश और उस दवा के प्रयोग के अन्य प्रभावों और खतरों से संबंधित जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। जब आप वस्त्र खरीदेंगे तो धुलाई संबंधी निर्देश प्राप्त करेंगे।

NOTES

आखिर ऐसे नियम क्यों बनाये गये हैं कि वस्तु बनाने वाले को ये जानाकारियाँ देनी पड़ती हैं ? यह इसलिये कि उपभोक्ता जिन वस्तुओं और सेवाओं को खरीदता है, उसके बारे में उसे सूचना पाने का अधिकार है। तब उपभोक्ता वस्तु की किसी भी प्रकार की खराबी होने पर शिकायत कर सकता है, मुआवजे पाने या वस्तु बदलने की मांग कर सकता है। उदाहरण के लिये, यदि हम एक उत्पाद खरीदते हैं और उसके खराब होने की अंतिम तिथि के पहले ही वह खराब हो जाता है, तो हम उसे बदलने के बारे में कह सकते हैं। यदि वस्तु खराब होने की अंतिम समय -सीमा उस पर नहीं छपी है, तब विनिर्माता दुकानदार पर आरोप लगा देगा और अपनी जिम्मेदारी नहीं मानेगा। यदि लोग अंतिम तिथि समाप्त हो गई दवाओं को बेचते हैं, तो उनके खिलाफ कार्यवाही की जा सकती है। इसी तरह से यदि, कोई व्यक्ति मुद्रित मूल्य से अधिक मूल्य पर वस्तु बेचता है तो कोई भी उसका विरोध और शिकायत कर सकता है। यह अधिकम खुदरा मूल्य (MRP) के द्वारा इंगित किया हुआ होता है। वस्तुतः उपभोक्ता, विक्रेता से अधिकतम खुदरा मूल्य (MRP) से कम दाम पर वस्तु देने के लिये मोल-भाव कर सकते हैं।

आज सरकार प्रदत्त विविध सेवाओं को उपयोगी बनाने के लिये सूचना पाने के अधिकार को बढ़ा दिया गया है।सन् 2005 के अक्टूबर में भारत सरकार ने एक कानून लागू किया जो RTI (राइट टू इनफॉरमेशन) या सूचना पाने का अधिकार के नाम से जाना जाता है और जो अपने नागरिकों को सरकारी विभागों के कार्य-कलापों की भी सूचनाएं पाने के अधिकार को सुनिश्चित करता है। किसी भी उपभोक्ता को जो कि किसी सेवा को प्राप्त करता है, चाहे वह किसी भी आयु या लिंग का हो और किसी भी तरह की सेवा प्राप्त करता हो, उसको सेवा प्राप्त करते हुए हमेशा चुनने का अधिकार होगा। मान लीजिये, आप एक दंतमंजन खरीदना चाहते हैं और दुकानदार कहता है कि वह केवल दंतमंजन तभी बेचेगा, जब आप दंतमंजन के साथ एक ब्रश भी खरीदेंगे। अगर आप ब्रश खरीदने के इच्छुक नहीं हैं, तब आपके चुनने के अधिकार का उल्लंघन हुआ है। ठीक इसी तरह, कभी-कभी जब आप नया गैस कनेक्शन लेते हैं तो गैस डीलर उसके साथ एक चूल्हा भी लेने के लिये दबाव डालता है। इस प्रकार कई बार हमें उन वस्तुओं को खरीदने के लिये दबाव डाला जाता है, जिनको खरीदने की हमारी इच्छा बिलकुल नहीं होती और तब आपके पास चुनाव के लिये कोई विकल्प नहीं होता।

उपभोक्ताओं को न्याय पाने के लिये कहाँ जाना चाहिये?

उपभोक्ताओं को अनुचित सौदेबाजी और शोषण के विरुद्ध क्षतिपूर्ति निवारण का अधिकार है। यदि एक उपभोक्ता को कोई क्षति पहुँचाई जाती है तो क्षति की मात्रा के आधार पर उसे क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार होता है। इस कार्य को पूरा करने के लिये एक आसान और प्रभावी ज़न प्रणाली बनाने की आवश्यकता है। भारत में उपभोक्ता आंदोलन ने विभिन्न संगठनों के निर्माण में पहल की है, जिन्हें सामान्यतया उपभोक्ता अदालत या उपभोक्ता संरक्षण परिषद् के नाम से जाना जाता है। ये उपभोक्ताओं का मार्गदर्शन करती हैं कि कैसे उपभोक्ता अदालत में मुकदमा दर्ज कराएं। बहुत से अवसरों पर ये उपभोक्ता अदालत में व्यक्ति विशेष (उपभोक्ता) का प्रतिनिधित्व भी करते हैं। ये स्वयंसेवी संगठन जनता में जागरूकता पैदा करने के लिये सरकार से वित्तीय सहयोग भी प्राप्त करते हैं।

कोपरा के अंतर्गत उपभोक्ता विवादों के निपटारे के लिये जिला, राज्य और राष्ट्रीय स्तरों पर एक त्रिस्तरीय न्यायिक तंत्र स्थापित किया गया है। जिला स्तर का न्यायालय 20 लाख तक के दावों से संबंधित मुकदमों पर विचार करता है, राज्य स्तरीय अदालतें 20 लाख से एक करोड़ तक और राष्ट्रीय स्तर की अदालतें 1 करोड़ से ऊपर की दावेदारी से संबंधित मुकदमों को देखती हैं । यदि कोई मुकदमा जिला स्तर के न्यायालय में खारिज कर दिया जाता है, तो उपभोक्ता राज्य स्तर के न्यायालय में और उसके बाद राष्ट्रीय स्तर के न्यायालय में भी अपील कर सकता है। इस प्रकार, अधिनियम ने उपभोक्ता के रूप में उपभोक्ता न्यायालय में प्रतिनिधित्व का अधिकार देकर हमें समर्थ बनाया है।

NOTES

जागरूक उपभोक्ता बनने के लिये आवश्यक बातें

जब हम विभिन्न वस्तुएं और सेवाएं खरीदते वक्त, उपभोक्ता के रूप में अपने अधिकारों के प्रति सचेत होंगे, तब हम अच्छे और बुरे में फर्क करने तथा श्रेष्ठ चुनाव करने में सक्षम होंगे। एक जागरुक उपभोक्ता बनने के लिये निपुणता और ज्ञान प्राप्त करने की जरुरत होती है।

कोपरा (COPRA) अधिनियम ने केन्द्र और राज्य सरकारों में उपभोक्ता मामले के अलग विभागों को स्थापित करने में मुख्य भूमिका अदा की है।

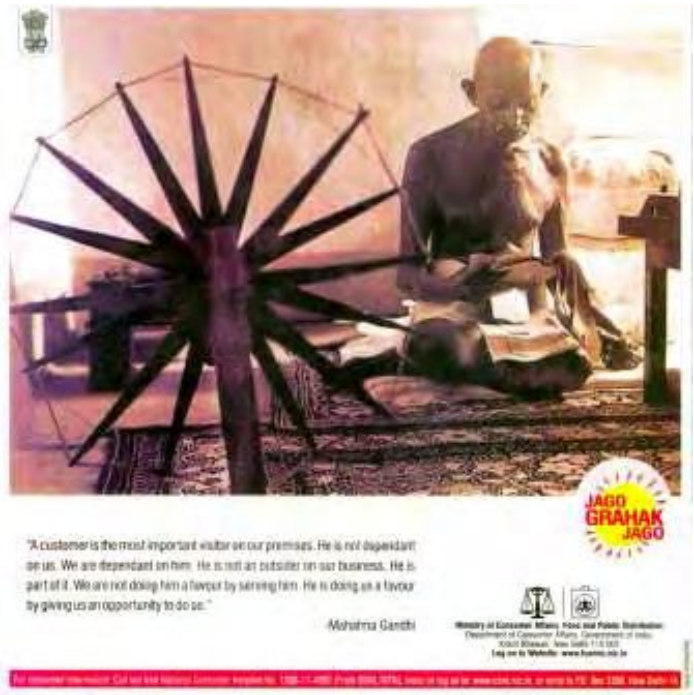

आई.एस.आई और एगमार्क

विभिन्न वस्तुएँ खरीदते समय आपने आवरण पर लिखे अक्षरों- आई.एस.आई, एगमार्क या हॉलमार्क के शब्दचिन्ह (लोगो) को अवश्य देखा होगा। जब उपभोक्ता कोई वस्तु या सेवाएँ खरीदता है, तो ये शब्दचिह्न (लोगो) और प्रमाणक चिह्न उन्हें अच्छी गुणवत्ता सुनिश्चित कराने में मदद करते हैं। ऐसे संगठन जो कि अनुवीक्षण तथा प्रमाणपत्रों को जारी करते हैं, उत्पादकों को उनके द्वारा श्रेष्ठ गुणवत्ता पालन करने की स्थिति में शब्दचिह्न (लोगो को) प्रयोग करने की अनुमति देते हैं।

यद्यपि ये संगठन बहुत से उत्पादों के लिए गुणवत्ता का मानदंड विकसित करते हैं, लेकिन सभी उत्पादकों का इन मानदण्डों का पालन करना जरूरी नहीं होता। फिर भी, कुछ उत्पाद जो उपभोक्ता की सुरक्षा और स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं या जिनका उपयोग बड़े पैमाने पर होता है, जैसे कि, एल.पी.जी. सिलिंडर्स, खाद्य रंग एवं उसमें प्रयुक्त सामग्री, सीमेंट, बोतलबंद पेयजल आदि। इनके उत्पादन के लिए यह अनिवार्य होता है कि उत्पादक इन संगठनों से प्रमाण प्राप्त करें।

उपभोक्ता आंदोलन का विकास

24 दिसंबर को भारत में राष्ट्रीय उपभोक्ता दिवस के रूप में मनाया जाता रहा है। 1986 में इसी दिन भारतीय संसद ने उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम पारित किया था। भारत उन देशों में से एक है, जहाँ उपभोक्ता संबंधित समस्याओं के निवारण के लिए विशिष्ट न्यायालय है।

NOTES

भारत में उपभोक्ता आंदोलन ने संगठित समूहों की संख्या और उनकी कार्य विधियों के मामले में कुछ तरक्की की है। आज देश में 700 से अधिक उपभोक्ता संगठन हैं, जिनमें से केवल 20-25 ही अपने कार्यों के लिए पूर्ण संगठित और मान्यता प्राप्त हैं।

फिर भी, उपभोक्ता निवारण प्रक्रिया जटिल, खर्चीली और समय साध्य साबित हो रही है। कई बार उपभोक्ताओं को वकीलों का सहारा लेना पड़ता है। ये मुकदमें अदालती कार्यवाहियों में शामिल होने और आगे बढ़ने आदि में काफी समय लेते हैं। अधिकांश खरीददारियों के समय रसीद नहीं दी जाती हैं, ऐसी स्थिति में प्रमाण जुटाना आसान नहीं होता है। इसके अलावा बाजार में अधिकांश खरीददारियाँ छोटे फुटकर दुकानों से होती है।

दोषयुक्त उत्पादों से पीड़ित उपभोक्ताओं की क्षतिपूर्ति के मुद्दे पर मौजूदा कानून भी बहुत स्पष्ट नहीं है। कोपरा के अधिनियम के 25 वर्ष बाद भी भारत में उपभोक्ता ज्ञान बहुत धीरे-धीरे फैल रहा है। श्रमिकों के हितों की रक्षा के लिए कानूनों के लागू होने के बावजूद, खास तौर से असंगठित क्षेत्र में ये कमजोर है। इस प्रकार, बाजारों के कार्य करने के लिए नियमों और विनियमों का प्रायः पालन नहीं होता।

फिर भी, उपभोक्ताओं को अपनी भूमिका और अपना महत्व समझने की जरूरत है। यह अक्सर कहा जाता है कि उपभोक्ताओं की सक्रिय भागीदारी से ही उपभोक्ता आंदोलन प्रभावी हो सकता है। इसके लिए स्वैच्छिक प्रयास और सबकी साझेदारी से युक्त संघर्ष की जरूरत है।

■■■

KOTHARI
GROUP OF INSTITUTIONS